ॐ

10.2

उपकारका बदला

[पढ़ो, समझो और करो, भाग ६]

Poonam



गीताप्रेस, गोरखपुर

मूल्य पचास पैसे



॥ श्रीहरिः ॥

उपकारका बदला

[पढ़ो, समझो और करो,

भाग ६]





प्रभु अपनी कृपाके द्वारा विपत्तियोंसे उबार लेते हैं

"जीवनमें ऐसे भी क्षण आते हैं, जब हम चारों ओरसे निराश हो परम पिता परमात्माको आर्त होकर पुकार उठते हैं और प्रभु तत्क्षण हमें अपनी मङ्गलमयी कृपाके द्वारा विपत्तियोंसे उबार लेते हैं।"

(इसी पुस्तकसे—पृष्ठ १६)

विषय-सूची

विषय



श्रीहरिः

उपकारका बदला

[पढ़ो, समझो और करो, भाग ६]

प्रभुकी कृपा—एक आप-बीती

लगभग २५ वर्ष पहलेकी बात है। स्वास्थ्य-सुधारके लिये मैं मंसूरी गया हुआ था। किशोरावस्थाका आरम्भ था। होश कम, जोश ज्यादा। एक दिन 'कामटी फॉल्स' सैर करनेके लिये चला गया। चोटीपर चढ़नेकी इच्छा हुई। चोटी बड़ी चिकनी और नुकीली थी। ब्रीचेज, मोजा और जूता पहने था। जूता पहने ही चढ़ने लगा। उन दिनों ईश्वरमें विश्वास रखनेकी बात कौन कहे, नाम लेना भी गुनाह तथा शानके खिलाफ समझता था। चढ़ता गया, बढ़ता गया। एक-ब-एक पैर फिसला। लुढ़कने लगा, लुढ़कता गया। नीचे हजारों फुटकी गहराई थी। अनायास हृदयसे आवाज निकली—'हे भगवान्! रक्षा करो'। आप मानें या न मानें, तत्काल ही एक वृक्षकी जड़ हाथमें आ गयी। तिनकेका सहारा मिला। जड़ पकड़कर झूलने लगा। डर भी रहा था कि कहीं जड़

टूट न जाय। दूसरा कोई सहारा भी तो नहीं था। इतनेमें ही साथी लोग आ गये। उन लोगोंने अपना साफा खोलकर नीचे लटकाया। साफाके सहारे किसी तरह ऊपर आ सका। जानमें जान आयी। उस दिनसे ईश्वरमें अपार श्रद्धा हो गयी। नियमित रूपसे संध्या-वन्दन भी करने लगा।

× × ×

दूसरी घटना सन् १९५९ के नवम्बर ३० की है। अकस्मात् अर्धरात्रिके पश्चात् याद पड़ा कि 'आज सोमवती अमावास्या है, काशी चलकर बाबा विश्वनाथका दर्शन और गङ्गास्नान करना चाहिये।' गाँवसे स्टेशन तीन मील दूर। कच्ची सड़क। गाड़ीके समयमें केवल डेढ़ घंटेकी देर थी। पैदल ही चल पड़ा। स्टेशन आनेपर देखा कि जिस प्लैटफार्मपर काशी जानेवाली गाड़ी लगती है, उसपर एक मालगाड़ी लगी हुई थी। पूछनेपर पता चला 'इंजनमें पानी नहीं है और यह गाड़ी इसी प्लैटफार्मपर रहेगी।' बनारस जानेवाली 'देहरादून एक्सप्रेस' बीचवाली लाइनपर आ रही है। स्टेशनपर दो ही प्लैटफार्म हैं। एक अप ट्रेनोंके लिये, दूसरा डाउन ट्रेनोंके लिये। बीचवाली लाइन अकस्मात् कोई गाड़ी आ जाय तो उसके लिये है। अप प्लैटफार्मपर तो पहलेसे ही मालगाड़ी लगी थी। मैं डाउन प्लैटफार्मपर चला गया। डाउन प्लैटफार्मपर जाते ही देहरादून एक्सप्रेस आ गयी। कुछ समय तो दौड़-धूपमें बीता। ऊँचे दर्जेके सारे डिब्बे और खिड़कियाँ बंद थीं। एक पहले दर्जेके डिब्बेकी खिड़की खुली थी। छड़ पकड़कर मैं फुटबोर्डपर चढ़ गया।

अंदर एक सज्जन आराम कर रहे थे। मैंने पुकारकर दरवाजा खोलनेको कहा। उन्होंने टिकटके विषयमें पूछा। टिकट देखनेके पश्चात् उन्होंने द्वार खोल देनेका वचन दिया। मैं आश्वस्त हुआ। सोचा अभी खोल ही देंगे। गाड़ी खुल गयी। आउटर सिगनलतक तो गाड़ीकी गति धीमी रही। परंतु सिगनल पार होते ही गति बड़ी तेज हो गयी। मारे ठंडके मेरे हाथ ठिठुरने लगे। मैंने अंदरवाले सज्जनसे दरवाजा खोलनेके लिये पुनः प्रार्थना की। इस बार वे कुछ झल्ला गये। उठकर उन्होंने दरवाजा खोलनेके बजाय खिड़की भी बंद कर ली। दरवाजा अंदरसे बंद था। मेरी रही-सही आशा भी समाप्त हो गयी। ठंडी हवाके तेज झोंके और सर्दीसे मेरे हाथ फिसलने लगे। मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरा अन्त अब निश्चित है। मेरे हाथ कब छूट गये, मुझे याद नहीं। जब मुझे होश आया तो मैंने अनुभव किया कि मैं डाउन लाइनके बीचमें पड़ा हूँ। लाइन हिलने लगी। मैंने समझा भूकम्प हो रहा है। फिर विचार आया कि कोई गाड़ी आ रही होगी। यह भी याद आ गया कि मैं गाड़ीसे गिर गया हूँ। लाइनका हिलना बढ़ता ही जा रहा था। दाहिने अङ्गमें चोट काफी आयी थी। दाहिने अङ्गसे निकम्मा था। बायें हाथकी कोहनीपर जोर देकर उलटनेकी कोशिश करने लगा। प्रभुकी कृपा देखिये! ऐसा लगा कि किसीने मुझे लाइनके बीचसे उठाकर किनारे लुढ़का दिया। मेरे लाइनके किनारे आते ही एक गाड़ी उसी लाइनसे झपाकेके साथ गुजरी। यदि आधा मिनटकी देर होती तो मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाते। लाइनके किनारे मैं असहाय पड़ा था। कहीं कोई आता-जाता भी दिखायी

नहीं पड़ता था। दस-पाँच मिनटके बाद तीन-चार आदमी आते दिखायी पड़े। एक आदमी आगे बढ़ने लगा तो दूसरेने मना किया—'ए कहाँ जाते हो ? पता नहीं मरता है या बच रहा है ? नाहक थानापुलिसके चक्करमें पड़ोगे !' आगे बढ़नेवालेने कहा—'जो कुछ भी हो, मैं तो जाऊँगा ही।' मैं पड़ा-पड़ा सब सुनता रहा। वह व्यक्ति मेरे पास आ गया। मैं उसे नहीं पहचान सका, किंतु उसने मुझे पहचान लिया। वह मुझे टाँगकर अस्पताल लाया। एक मासतक गयाके 'पिल्ग्रिम' अस्पतालमें रहा। इतना होनेपर भी कोई सांघातिक चोट नहीं आयी थी। दाहिने हाथमें कुछ चोट आयी थी और सिरमें पत्थर धँस गया था, जो साधारण उपचारमें ही ठीक हो गया। डाक्टर हैरान, देखने आनेवाले हैरान ! गयाके स्टेशनमास्टरने कहा—'देहरादून एक्सप्रेस और बम्बई मेलसे गिरनेवाला तो कोई बचा नहीं। ये कैसे बच गये ? लगता है किसीने खड़े होकर बचाया है।' अब आप ही सोचिये, किसने मेरी रक्षा की ? मेरे पास तो एक ही उत्तर है—'उन्हीं बाबा विश्वनाथने, जिनके दर्शनोंके लिये मैं जा रहा था।'*

—कुमार रणविजयसिंह

---

* इस घटनाको पढ़नेवाले दो बातोंको जीवनमें उतार लें—

(१) चलती गाड़ीमें फुटबोर्डपर खड़े मनुष्यको दरवाजा खोलकर अवश्य अंदर ले लें और (२) विपत्तिमें पड़े हुएके पास जाकर उसे बचानेका अवश्य प्रयत्न करें। —सम्पादक

छोटेका बड़ा मन

जाड़ेका कँपाता प्रातःकाल था। मैं अपने कमरेमें खिड़कीके पास बैठा पढ़ रहा था। इतनेमें मेरे कानमें आवाज आयी—'माई! कोई फटा-पुराना कपड़ा हो तो दो न! सर्दीसे मरी जा रही हूँ।'

मैंने खिड़कीसे बाहरकी ओर देखा तो सामने रहनेवाले सेठके मकानकी देहलीके पास बाहर एक भिखारिन खड़ी थी।

बुढ़ापेके कारण उसकी कमर बिल्कुल झुक गयी थी। सारे शरीरपर झुर्रियाँ पड़ी थीं। देहको गला दे, ऐसी सर्दीसे काँपते हुए शरीरपर एक ही कपड़ा था। उसने जब दो-चार बार इस तरह करुण आवाज लगायी, तब अंदरसे सेठानीकी जोरकी आवाज सुनायी दी—'इतने सबेरे कौन निकम्मा बैठा है तुझे देनेको ? जा, चली जा।'

'माजी ! भगवान् तुमको········' उसके पूरे बोलनेके पहले ही सेठानी चीख उठी—'अरी जमकू ! निकाल, निकाल इसको यहाँसे, ऐसे न जानें कितने चले आयँगे········'

और मैं मन-ही-मन सोचने लगा—'क्या कच्छके दातारोंकी पाली-पोसी हुई मानवता मर गयी ?········'

वहाँ आँगनमें कूड़ा बुहारती हुई 'जमकू' मालकिनका हुक्म सुनकर बाहर आयी। मैंने सोचा—यह अभी भिखारिनका हाथ पकड़कर बाहर ढकेल देगी; पर वहाँ तो इस गरीब नौकरानीके हृदयमें अचानक करुणाका झरना फूट निकला। इसने भिखारिनकी रोनी सूरत देखकर तुरंत अपने सिरकी ओढ़नी उतारकर उसके शरीरपर फेंक दी।

मैं देखकर सोचने लगा—'नहीं-नहीं, वह मानवता अभी मरी नहीं है। किसी-किसीके हृदयमें अब भी बस रही है।'

(अखण्ड आनन्द) —धीरेन्द्र मेहता

पीपल—भयंकर-से-भयंकर विषधर सर्पका अचूक इलाज

उपर्युक्त शीर्षकसे मेरा एक लेख 'कल्याण' वर्ष ३४, अङ्क २ (फरवरी) सन् १९६० के पृष्ठ ७६६ पर पीपल-पत्रके द्वारा सर्प-विषनाशके प्रयोगके सम्बन्धमें प्रकाशित हुआ था। उसके बाबत मेरे पास सैकड़ों पत्र पूछ-ताछके लिये आये हैं। कुछ ऐसे पत्र भी आये हैं, जिनमें प्रयोगसे पूर्ण लाभ होनेकी घटनाओंका उल्लेख है। इस सम्बन्धमें कई सज्जनोंने प्रश्न किये हैं; उनका उत्तर मैं यहाँ लिख रहा हूँ।*

(१) सर्प काटनेके चाहे जितनी देर बाद भी यह प्रयोग

* यह लेख 'पढ़ो, समझो और करो भाग ५' पृष्ठ २४ से ३१ में प्रकाशित हो चुका है। वहाँ देखना चाहिये। —सम्पादक

किया जा सकता है । यदि रोगी जीवित है तो इस प्रयोगसे उसका विषमुक्त होना निश्चित है ।

(२) बेहोशी हो जाने तथा नाकी बैठ जानेके बाद भी यह प्रयोग काम करेगा, बशर्तें कि खूनकी चाल बंद न हो गयी हो । मैंने मूसानगरके श्रीबद्रीप्रसादजीकी पुत्रीपर साँप काटनेके ६ घंटे बाद प्रयोग किया था, उसकी नाकी बैठ गयी थी, पर वह अच्छी हो गयी और आज मौजूद है ।

(३) रोगीको पाँच ही आदमी पकड़ें—कम-ज्यादा नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है । अभिप्राय इतना ही है कि रोगी किसी प्रकार भी हिल-डुल न सके, फिर चाहे कितने ही आदमी पकड़ें । पाँच आदमियोंके पकड़नेसे प्रायः प्रत्येक अङ्ग पकड़ा जाता है, इसलिये पाँचकी संख्या लिखी गयी थी ।

(४) रोगीको लिटाकर या बैठाकर चाहे जैसे प्रयोग किया जा सकता है । पर मेरी समझमें बैठाकर पत्ते डालनेमें अधिक सुविधा रहेगी ।

(५) मैंने अबतक काले सर्पोंके काटे रोगियोंपर ही यह प्रयोग किया है; क्योंकि इधर दूसरी तरहके साँप हैं ही नहीं । अतः मैं निश्चित नहीं बता सकता । आप प्रयोग करके देख सकते हैं ।

(६) मैंने मनुष्योंपर ही इसका प्रयोग किया है । जानवरोंपर कभी प्रयोग नहीं किया । इससे मेरा अनुभव नहीं है । किसी पशुको साँप काटनेकी घटना सामने आये तो आप प्रयोग करके देख सकते हैं ।

(७) सर्पका विष उतारनेका जैसा यह सिद्ध प्रयोग मैं जानता हूँ, वैसा बिच्छू आदि अन्य जहरीले जन्तुओंके विषनाशका मैं नहीं जानता। थोड़ा-थोड़ा जैसे और लोग जानते हैं, वैसा ही मैं भी जानता हूँ।

(८) पीपलसे कुछ पत्तोंकी एक डाली तोड़ लीजिये। डालीमें जो पत्ते होते हैं, उनमें प्रत्येक पत्तेके पीछे एक सींकके समान डंडी होती है। जब पत्ते डालीसे तोड़ें तो उस सींक या डंडीके समेत ही तोड़ें। उसी डंडी या सींककी नोकको रोगीके कानमें डालिये।

(९) आप रोगीके सामने बैठ जाइये। अपने दोनों हाथोंमें एक-एक पत्ता ले लीजिये और दाहिने हाथके पत्तेकी सींक रोगीके बायें कानमें और बायें हाथके पत्तेकी सींक रोगीके दाहिने कानमें डालिये।

(१०) अनुमानसे एक इंच डालनेकी बात लिखी थी। असलमें कानके पर्देतक नोक पहुँच जानी चाहिये। यदि नोक दूर होगी और जहर होगा तो रोगी चिल्लायेगा नहीं। वह न चिल्लाये, तबतक सींकको कानमें डालते रहें। जब चिल्लाना शुरू करे, तब रोक दें।

(११) जबतक जहर कमर और सीनेसे ऊपर नहीं पहुँचेगा, तबतक पत्ता काम नहीं करेगा। अतः बन्ध बँधा होनेपर यदि जहर रुका होता है तो पत्ता काम नहीं करता। किंतु चाहे जितना ही बन्ध हो, धीरे-धीरे जहर बन्धको पार करके कुछ देरमें ऊपर अवश्य आयेगा। जब पत्ता लगानेपर रोगी चिल्लाने लग

जाय, तब उसी समय बन्ध खोल देना चाहिये। अन्यथा पत्ता बन्धके ऊपरका ही जहर खींच सकेगा! बन्धके नीचेका जहर ज्यों-का-त्यों रह जायगा।

(१२) मैंने हरे पत्तेका ही प्रयोग किया है और मैं समझता हूँ सूखा पत्ता काम नहीं करेगा।

(१३) जहर कमर और सीनेके ऊपर चढ़ा या नहीं, इसकी परीक्षाके लिये नीमकी पत्ती रोगीको चबवाइये। नीमकी पत्ती कड़वी लगे और रोगी थूक दे तो समझिये जहर नहीं है। चबाता जाय तो जहर है। नीममें भी विषनाशक गुण है। रोगीको नीमकी पत्ती चबवानेसे जहर मरता है और जहर मरते ही पत्ती कड़वी लगने लगती है। फिर रोगी उसे चबाता नहीं।

(१४) अपने स्थानमें पीपलका पेड़ न हो तो जहां पेड़ हो, वहींसे डाली तोड़कर मँगवा सकते हैं।

(१५) पीपलके वृक्षके नीचे रोगीको ले जानेकी आवश्यकता नहीं है। जहाँ रोगी हो, वहीं डाली मँगवाकर पत्तोंका प्रयोग कर सकते हैं।

(१६) सर्प काटनेपर घाव नहीं होता। उसे यदि चीर दिया गया हो तो फिर उस जगह कुएँमें डालनेवाली लाल दवा (पोटाश परमैंगनेट) भर देनी चाहिये। दस-पाँच दिनोंमें घाव आप ही ठीक हो जायगा।

(१७) रोगीके ठीक हो जानेपर उसे एकसे डेढ़ छटा क तक

गायके शुद्ध घृतमें १०-१२ काली मिर्च पीसकर मिलाकर पिला देना चाहिये और कम-से-कम ८ घंटे सोने नहीं देना चाहिये ।

(१८) मुझे विश्वास है कि इस प्रयोगसे अवश्य लाभ होगा । बहुतोंको लाभ पहुँचा है, यह मेरा अनुभव है । मैंने न तो कोई उनकी सूची बनाकर रक्खी है और न किस-किसको आराम हुआ, उनके नाम बतानेकी आवश्यकता ही है । आपको विश्वास हो तो प्रयोग करके देखिये । 'कल्याण' में प्रकाशित होनेके बाद इस प्रयोगसे लाभ होनेके मुझे कई पत्र मिले हैं । *

(१९) जिनको फिर भी कोई शङ्का हो, वे मुझसे नीचे लिखे पतेपर जवाबी कार्ड लिखकर पूछ सकते हैं । पर मुझको पत्र हिंदी या अंगरेजीमें ही लिखना चाहिये ।

—मेवालाल तार्किक, पो० मूसानगर (कानपुर) उ० प्र०

---

* हमारे पास भी इस प्रयोगसे लाभ होनेके कई पत्र आये हैं । एक पत्र अभी हालमें श्रीवीरसिंहजी चौहान, नया-गाँव, पो० खोड़ (शिवपुरी) का आया है, जिसमें लिखा है कि "यहाँ सेठ रामसेवकजी गुप्तकी धर्मपत्नीको संध्या ६ बजे एक भयंकर काले सर्पने डँस लिया । स्थानीय तथा बाहरी बहुत-से जानकार महानुभावोंने सभी तरहके उपचार किये, पर कोई भी लाभ नहीं हुआ । उनको मृतक मान लिया गया । सब निराश हो गये । तब ईश्वरीय प्रेरणासे मुझे 'कल्याण'में प्रकाशित प्रयोगकी बात याद आयी । प्रयोग आरम्भ किया गया और करीब १४ पत्ते बदलनेपर वह पूर्ण स्वस्थ हो गयीं । समस्त विष उतर गया । जब रोगिणीने स्वयं बतलाया, तब सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ ।"—सम्पादक ।

आदर्श सास

आशारामजी बहुत पैसेवाले आदमी थे। बड़ी इज्जत थी। उनकी साध्वी पत्नीका नाम था गंगाबाई। उनके दो पुत्र थे — मंगलचंद और शिवदयालु। मंगलचंदका विवाह हो गया था। बहू सीता घरमें आ गयी थी। उसका स्वभाव कुछ रूखा था। वह बात-बातपर खीझ जाती; पर भली सास कुछ नहीं बोलती, हँस देती। शिवदयालका विवाह भी हो गया। उसकी पत्नी रामा भी घरमें आ गयी। रामाके पिता पहले बहुत पैसेवाले थे, पर दैवयोगसे उनका काम कच्चा रह गया। अतएव रामा सदा उदास रहती। सोचती, घरमें मेरा अनादर होगा। गरीबकी लड़कीका पैसेवाले ससुरालमें क्यों आदर होगा। परंतु साध्वी गंगाने तथा आशारामजीने अब उसके साथ विशेष स्नेहका बर्ताव आरम्भ कर दिया। मंगलचंदका व्यवहार भी बहुत ही सुन्दर था। पति शिवदयाल अभी पढ़ते थे, पर उनका बर्ताव स्नेहभरा था। परंतु अपने स्वभाववश सीता जेठानी बीच-बीचमें कुछ ताना मारा करती थी। बात यह थी कि रामाके विवाहमें मुँहदिखाई आदिके नौ हजार रुपये आये थे। वे रुपये उसके पिताके पास थे। पिता व्यापारमें नुकसान हो जानेसे उन्हें दे नहीं सके। अतः सीता समय-समयपर रामाके माता-पिताके लिये कुछ-न-कुछ कह दिया करती। सास रोकती, पति भी समझाते; पर उसका स्वभाव ही ऐसा था। रामा चुपचाप रोया करती। एक दिन भली सासने अकेलेमें आकर रामाके हाथमें नोटोंका बंडल दिया और कहा कि 'बेटी! ये रुपये ले जा, लगभग साढ़े दस हजार रुपये हैं। तू इन्हें ले जाकर अपने पिताको दे दे और कह दे कि ब्याजसमेत

हमारे रुपये लौटा दें । तेरे पिता यह न समझें कि उन्हें दान या सहायता दी जा रही है । उनको अब जैसे अभी हमारे घरके रुपये देने हैं, इसके बाद मेरे देने रहेंगे । जब वे देंगे, तभी मैं ले लूँगी । और बेटी ! मैं भी लेकर तुमलोगोंको ही तो दूँगी । रथीपर बाँधकर साथ थोड़े ही ले जाऊँगी; अतः अगर मैं मर जाऊँ और तेरे पिताजीकी स्थिति उसके बाद रुपये देनेकी हो तो वे तुझे दे दें । मैं इसमें यह बात लिखकर लायी हूँ, तू जाकर अपने पिताजीको दे दे और समझा दे कि वे एक-दो दिनमें ही इनके रुपये लौटा दें ।'

रामा सासके वर्तावको देखकर दंग रह गयी । उसके आँसू बह चले और उसने सासके चरण पकड़ लिये । वह पिताके पास गयी, रुपये तथा सासका लिखा पत्र दे दिया । उन्होंने बड़े ही संकोचसे रुपये लिये । दूसरे दिन रामाके रुपयोंका हिसाब करके उसके ससुरजीको रुपये भेज दिये । गंगाने यह बात अपने पतिके सिवा बेटोंसे भी नहीं कही । पतिकी तो आज्ञा थी ही । अब सीताका मुँह बंद हो गया । रामा सुखी रहने लगी ।

पाँच-छः वर्षों बाद एक व्यापारमें रामाके पिताने रुपये कमा लिये और रामाकी सासके रुपये ब्याजसमेत लौटा दिये गये ।

बात-बातमें बहूपर अकारण ही खीझनेवाली, ताना मारनेवाली तथा उसके माता-पिताको खोटी जबान कहनेवाली आजकी सासुएँ इसपर ध्यान देकर अपने जीवनमें परिवर्तन करें । —हरनारायण

मुल्लाजीकी मानवता

मेरे स्वर्गवासी पिताजीका देहावसान हुए लगभग बीस वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो चुका है। उस समय मेरी आयु पाँच वर्षसे भी कम थी। उन दिनों हमारे परिवारमें लगभग ३०—३२ प्राणी थे। कृषि एवं शासकीय सेवाके फलस्वरूप अच्छी आय हो जाती थी।

कालान्तरमें हमारी गृहदशामें परिवर्तन होने लगा। ऋणमें वृद्धि तथा आयका अभाव हो गया।

एक दिन हमलोगोंने मिलकर यह निश्चय किया कि अब अलग-अलग होकर, भविष्यमें ऋण न बढ़े एवं भूमि भी ज्यों-की-त्यों बनी रहे——ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। प्रत्येक सम्पत्तिके तीन भाग हुए और ६०००) रु०से अधिक जो ऋण हो चुका था, वह भी २०००) के लगभग प्रत्येकको बाँट दिया गया।

मैंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि यह सब होनेवाला है। अतः मैं व्याकुल होकर किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। अन्तमें मैंने आत्मघात-जैसा जघन्य अपराध करनेका विचार किया। मेरी पू० माताजीको यह सब ज्ञात हो गया और उन्होंने कई उदाहरण देकर मुझे इस पापसे बचाया!

कुछ खेत (जो मेरे भागमें आये थे) रेहन रखकर मैं ऋण-मुक्त होनेकी योजना कार्यान्वित करने लगा। मेरे हिस्सेमें जो ऋण आया था, उसमें ४००) उसी ग्रामके एक मुल्लाजीके

भी थे। किसी समय उनकी दूकान सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी, किंतु इन दिनों उनकी भी वह दूकान नष्टप्राय-सी हो गयी। कठिनाईसे तीस-चालीस रुपये मासिक आय हो जाती होगी।

जब मैं ४००) उनके सामने रखकर बोला—'मुल्लाजी साहेब! लीजिये, ये रुपये हमारे (सम्मिलित समयके) खातेमें जमा कर लीजिये!' वे अपनी बही उठाकर पन्ने उलटने लगे। अचानक उनके हाथ स्तब्ध-से रह गये और न जाने क्यों उनकी आँखोंसे अश्रु-बिन्दु निकलकर श्वेत-श्याम दाढ़ीमें विलीन होने लगे। मैं समझ नहीं सका कि यह सब क्यों हो रहा है।

जैसे-तैसे उन्होंने वे ४००) रु० मेरे हाथमें रखते हुए भर्रायी हुई आवाजसे कहा—'भाई मनोहरलाल! तुम्हारे पिताजीका और मेरा बड़ा दोस्ताना था। उन्होंने एक बार ३००) मुझे रखनेके लिये दिये थे, जिनकी कोई लिखावट आदि नहीं है। तबसे आजतकके सूदको तो मैं नहीं दे सकता, परंतु अब ये ४००) मैं तुमसे नहीं लूँगा।' यों कहकर वे गम्भीर हो गये। मैं भी अपने-आपको सँभाल नहीं सका और भीगी आँखोंसे घर लौट आया।

जब कभी भी वे मुल्लाजी मुझे मिल जाते हैं, श्रद्धासे मेरा मस्तक अपने-आप झुक जाता है—इसलिये नहीं कि उन्होंने मेरे रुपये लौटा दिये, परंतु इसलिये कि आजके युगमें भी ऐसी मानवता वर्तमान है।

—मनोहर शर्मा 'विशारद' पोलायकलाँ

प्रभुकी कृपा

जीवनमें ऐसे भी क्षण आते हैं, जब हम चारों ओरसे निराश हो परमपिता परमात्माको आर्त होकर पुकार उठते हैं और प्रभु तत्क्षण हमें अपनी मङ्गलमयी कृपाके द्वारा विपत्तियोंसे उबार लेते हैं।

ऐसी ही एक सत्य घटना है, जो अभी-अभी कुछ समय पूर्व मेरे जीवनमें घटित हुई—

मेरे पति रेलवेमें एक उच्चपदस्थ कर्मचारी हैं। जब उन्हें इस जगहका नियुक्ति-पत्र मिला, तब उसकी एक धाराके अनुसार एक बड़ी लंबी धनराशि जमा करनी थी। नियुक्तिकी समस्त धाराएँ स्वीकार करनेपर ही उस पदपर नियुक्ति हुई। अथक परिश्रम और प्रयत्न करनेके पश्चात् बड़ी कठिनतासे उस धनराशिका केवल आधा भाग ही जमा करवाया जा सका; शेष आधेके लिये उच्चाधिकारीने एक मासका समय दिया और यह सूचना दी कि 'शेष धनका प्रबन्ध यदि न हुआ तो आप उस पदसे हटा दिये जायँगे।' पर लाख प्रयत्न करनेपर भी उस धनराशिका प्रबन्ध न हो सका। हमारा दोनोंका बुरा हाल था। कहींसे भी आशाकी एक भी किरण न दिखायी दी। दिवालीका दिन था और हमारा मन बड़ा खिन्न था। हम निराश होकर रो-रोकर अपने प्रभुको पुकार रहे थे। जीवनमें इतनी निराशा और फीकी दिवाली कभी

नहीं आयी थी। वापस जाना अच्छा नहीं लग रहा था और यदि दो दिनमें रुपयोंका प्रबन्ध न हो सका तो पदच्युत होना निश्चित ही था।

मन अत्यन्त उदास था, पर भगवान्‌के ऊपर हमारा दृढ़ विश्वास था कि कोई-न-कोई दैवी शक्ति हमें इस संकटसे उबार लेगी। ठीक इसी समय, जब हम दोनोंकी मनोदशा दयनीय थी, तभी एक सज्जन हमारे घरपर आये और उन्होंने हमारे विश्वासको बल दिया और यह आश्वासन दिया कि 'चिन्ता त्यागकर ईश्वरसे प्रार्थना करो—प्रभु जो करेंगे, वह मङ्गलमय ही होगा।' हम आर्त होकर प्रभुसे प्रार्थना करते रहे और उन्होंने हमारी पुकार सुनी ही नहीं, हमें आश्चर्यमें डालकर सभी कष्टोंको मिटाकर परम आनन्द प्रदान किया। ठीक दिवालीके दो ही दिन बाद एक सूचनाद्वारा यह समाचार मिला कि 'जिस धनराशिका जमा कराना नियुक्ति-पत्रकी धाराके अनुसार आवश्यक था, वह धनराशि आधी कर दी गयी।' इस समाचारसे हमारे आनन्दकी सीमा न रही।

उस परम प्रभुकी कृपाके साक्षात् दर्शन करके हम धन्य हो गये। मेरा यह अटल विश्वास है कि प्रभुसे यदि सच्चे मनसे प्रार्थना की जाय और आर्त होकर प्रभुको पुकारा जाय तो वे अवश्य ही प्रार्थना सुनेंगे। चाहिये प्रार्थनामें सच्ची आर्तता और प्रभुमें अटल विश्वास!

—श्रीमती प्रेमलता चतुर्वेदी प्रभाकर

गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी) की दवा

घरमें गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी) की बीमारी हो गयी। गत ता० १३ । ५ । ५९ को एक्सरे लिया तो नौ पत्थर थे। कलकत्ते-बंबईमें बड़े-बड़े डाक्टरोंको दिखलाया गया। सबने यही कहा कि 'ऑपरेशनके बिना रोग अच्छा नहीं होगा। कोई भी दवा काम नहीं करेगी।' तदनन्तर लगभग सालभर पहले श्रावणमें श्रीवैद्यनाथजी वैद्यसे बात हुई। उन्होंने कहा—'नारियलके फूल २१, काली मिर्च ७ के साथ पानीमें पीसकर उसे पिलाओ।' दस महीने लगातार यह दवा दोनों समय दी गयी। फिर, बद्रीनारायण-यात्रामें चले जानेसे दवा बंद रही। यात्रासे लौटनेपर बम्बईमें एक्सरे कराया गया, तब पता लगा कि 'तीन पत्थर तो बिल्कुल ही नहीं हैं। दूसरे पत्थर भी घिस गये हैं।' नौ पत्थर चनेके दानेसे भी बड़े-बड़े थे। सारे शरीरमें, खास करके छातीमें बड़े जोरका दर्द रहता था। बीच-बीचमें हिचकियाँ आती थीं। ये सब उपद्रव शान्त हो गये। एक्सरेका परिणाम देखकर डाक्टरने कहा कि 'हमारे यहाँ ऐसी कोई दवा नहीं है, जो इतने बड़े पत्थरोंको गला दे।' वे आश्चर्य कर रहे थे।

जहाँ नारियल होते हैं, वहाँ नारियलके फूल आसानीसे मिल जाते हैं। एक बड़ा सिट्टा-सा होता है, जो ऊपरसे बंद रहता है। तोड़कर रख देनेसे वह पाँच-सात दिनोंमें अपने आप फट जाता है। ऐसे एक सिट्टेमें लगभग एक सेरसे अधिक फूल निकलते हैं, जो दवाके काममें लिये जाते हैं।

मैंने यह अपने अनुभवकी बात लिखी है। लोग प्रयोग करके देखें।

—ओंकारमल पोद्दार

आर्त पुकारसे प्राणरक्षा

सन् १९४६ ईस्वीका समय था। उस समय वंगालमें सुहरावर्दीके मुख्य मन्त्रित्वका बोलवाला था। उनके मन्त्रित्वका मुख्य उद्देश्य था—हिंदुओंके ऊपर मनमाना अत्याचार करना, जिससे हिंदुओंकी जड़ वंगालसे एकदम उखड़ जाय। १६ अगस्त १९४६ ई०की उनकी काली करतूत किसी अत्याचारी शासकके अत्याचारको भी मात करती है। उनका अत्याचार नोआखालीतक बढ़ता गया। इसका नतीजा यह हुआ कि बगलके प्रदेश विहार और संयुक्तप्रान्तमें भी साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गये।

उस समय मैं मैजिस्ट्रेट था और मेरी बहाली एक वर्ष पहले हुई थी। हमारे शहरमें भी दंगा हुआ और हमें सशस्त्र पुलिसके साथ एक मुहल्लेमें जाना पड़ा तथा वहाँ हमें एक

महीनेतक रहना पड़ा। वहाँ मैंने हिंदू और मुसलमान दोनोंकी जानें बचायीं। इसलिये मुहल्लेके लोगोंने कलक्टर साहबसे कहकर उस मुहल्लेसे मेरा जाना कुछ दिनोंके लिये रोकवा दिया।

उस मुहल्लेमें एक दिन मुझे एक सुनसान कोठरीमें जानेका अवसर मिला, जिसमें कुछ पुराने बोरे भरे थे। मैं दीवालकी जड़में दरवाजेके मुँहपर थोड़ी देर खड़ा रहा। इतनेमेंही देखता हूँ कि एक गेहुँवन साँप करीब तीन, साढ़े तीन हाथका बोरोंसे निकला। उसे देखते ही मेरे होश उड़ गये। काटो तो बदनमें खून नहीं। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। किसी तरह वहाँसे भागनेकी भी सुविधा नहीं थी। उसे मारना भी सम्भव नहीं था। कोठरीसे भाग निकलनेमें खतरा था कि साँप यह समझकर कहीं डस ले कि यह मनुष्य मुझे मारने आ रहा है। करीब एक मिनटतक इस हालतमें रहा। तब मैंने अपने मनमें यह सोचा कि अब भगवान्‌को छोड़कर मुझे कोई नहीं बचा सकता और मैंने निम्नलिखित श्लोकको मन-ही-मन पढ़ना शुरू किया—

ॐ या त्वरा द्रौपदीत्राणे या त्वरा गजरक्षणे।
मय्यार्ते करुणामूर्ते ! सा त्वरा क्व गता हरे॥

एक मिनिट बाद ही साँप वहाँसे बिलमें चला गया, इसके बाद मैं वहाँसे भागा।

× × × ×

—श्रीबनारसीप्रसाद सिंह डि० मैजिस्ट्रेट एवं डि० कलक्टर

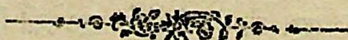
रामकी कृपा

घटना कई वर्ष पहलेकी है। मेरे पूज्य पिताजी, माताजी तथा मेरी छोटी बहन नैमिषारण्य तीर्थ गये थे। वहाँसे कुछ मील दूरपर हत्याहरण-तीर्थ है। वे वहाँ भी गये थे। उस समय बैलगाड़ीपर जाना-आना पड़ता था। लौटते समय बैलगाड़ीवालेने एक नदीके किनारे गाड़ी रोक दी और पड़ोसके गाँवसे सलाई लानेका बहाना लेकर वह चला गया। इधर संध्या हो रही थी। अँधेरा बढ़ रहा था। पिताजी बड़ी चिन्तामें थे—'अँधेरी रात है, अभी काफी रास्ता तै करना है। गाड़ीवान लौटा नहीं। कैसे गाड़ी चले ?' इतनेमें दिखायी दिया कि गाड़ीवान चार-पाँच लठैतोंको लेकर आ रहा है। इस दृश्यको देखकर पिताजी घबराये। उन्होंने जान लिया कि यह तो हमलोगोंको लूटनेकी तैयारीमें है। उस

समय उन्हें भगवान् श्रीरामके आश्रयके सिवा और कुछ नहीं सूझा। उन्होंने रामनामकी धुन लगा दी और मेरी माता तथा बहिनसे कहा कि तुमलोग भी रामका आश्रय लेकर रामनाम-कीर्तन करो। घोर विपत्तिमें धनुर्धर एकमात्र भगवान् राम ही रक्षा कर सकते हैं। सबने मिलकर धुन लगायी। इतनेमें ही क्या देखते हैं कि दो जवान बहादुर घुड़सवार हाथोंमें बंदूक लिये वहाँ आ गये हैं (प्रकट हो गये हैं) और गाड़ीवानको ललकारकर कह रहे हैं—'क्यों रे बदमाश! यात्रियोंको अकेले पाकर गुंडोंको ले आया है और इन्हें लूटनेकी तैयारी की है?' यों कहकर उसकी पीठपर दो चाबुक लगा दिये और बोले 'जल्दी गाड़ी जोड़ और यात्रियोंको तुरंत नैमिषारण्य पहुँचा, हम साथ चल रहे हैं।' गाड़ीवानके साथी तो भाग गये और गाड़ीवान काँपने लगा। पिताजी चुपचाप खड़े सब देख रहे हैं। वे मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हैं और अपने मनसे वे संकटहारी दोनोंको भगवान्के रूपमें ही मानो देख रहे हैं। उनसे बोला नहीं गया। दृष्टि दोनों तरुणोंपर गड़ी रही।

बस, फिर क्या था। गाड़ीवानने गाड़ी जोड़ दी और गाड़ी उनको लेकर नैमिषारण्यकी ओर चल दी। जबतक नैमिषारण्य अत्यन्त समीप नहीं आ गया, तबतक तो वे साथ दिखायी दिये। फिर अदृश्य हो गये। पिताजी वगैरह सकुशल धर्मशालामें पहुँच गये!

—श्रीरामकृष्ण चिहानी, निलफामारी (पू० पाकिस्तान)



उपकारका बदला

घटना १९५७ की है। मैं, मेरे पिताजी, माताजी और मेरा छोटा भाई—हम सब जीपमें बोरदी गाँव गये थे। दुपहरको वहीं रसोई बनाकर भोजन किया और वहाँके दृश्य देखे। स्थान बहुत ही पसंद आया। शामको लगभग सात बजे वहाँसे वापस चले। लगभग आधा रास्ता कट चुका था। रास्तेमें एक नाला पड़ता था, उस नालेको पार करती हुई जीप बीचमें अटक गयी। मेरे पिताजी स्वयं ही जीप चला रहे थे। उन्होंने इंजन खोलकर खामी देखनेका प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ। अब क्या किया जाय। पिताजी एक टॉर्च लेकर सहायता प्राप्त करनेके लिये चले। होते-होते पौन घंटा बीत गया, पर पिताजीके लौटनेके चिह्न नहीं दिखायी दिये। हम सब बहुत घबराये। इतनेमें दूर कुछ प्रकाश दिखायी दिया। दो-तीन लालटेनें थीं। फिर कुछ आदमी लाठी और लालटेन हाथोंमें लिये आते दिखायी दिये। वे बिल्कुल पास आ गये, तब पता लगा कि पिताजी इनमें नहीं हैं। इन आदमियोंमेंसे एकने कहा—

'सरदार ! भाग खुल गये, जान पड़ता है। अपने-आप ही सामनेसे शिकार मुँहमें आ रहा है; लगता है, सगुन अच्छे हुए।'

'हाँ, रे, ऐसा ही तो लगता है……'

बातचीतको सुनकर हमलोग दंग रह गये। यह तो लुटेरोंकी टोली थी। इतनेमें उस सरदारने मुझसे पूछा—'क्यों रे छोकरे ! तू जानता है कि हम कौन हैं? मैं कालिया हूँ।'

मैंने कहा—'देखो भाइयो ! हमारी जीप खराब हो गयी है, मेरे पिताजी मददके लिये गये हैं।'

'ओहो—तब तो तेरा डोकरा मददके लिये गया है, क्यों? तो मुझे अब उतावली करनी पड़ेगी।' यों कहकर उसने मेरी बहिनकी ओर देखकर कहा—'ए छोरी ! तेरे ये गहने उतार दे, जल्दी कर। अभी तो हमें लंबी राह काटनी है।' इतनेमें पिताजी हाथमें टॉर्च लिये अकेले ही आते दिखायी दिये। पास आकर और इन आदमियोंको देखकर उन्होंने मुझसे पूछा—'क्यों, श्रीधर ! यह कहाँसे मदद मिली?'

सरदारने भयंकर हँसी हँसकर कहा—'तेरी मददके लिये ही आये हैं हमलोग। कुछ बोझा तो हल्का कर ही देंगे। इस छोकरीके गहने तथा तेरी घड़ीका भार कम हो जायगा।' यों कहकर उसने लाठी ऊपर उठायी, हम समझ ही नहीं पाये कि अब क्या करना है।

इतनेमें ही उस सरदारने पिताजीसे पूछा—'अरे, तू क्या धंधा करता है?' मेरे पिताजीने कहा—'मैं जानवरोंका डाक्टर

हूँ ।' यह सुनकर सब एक दूसरेका मुँह ताकने लगे । सरदार-की आवाज बदल गयी—'तो अरे भैया ! पहले ही क्यों नहीं कह दिया ? मैं तुझे लूटूँ, यह कभी हो नहीं सकता; तेरे बिना हमारा जीना कैसे हो ? हमारे ढोर, हमारी गौमाताको अच्छी करनेवालेका हम एक बाल भी बाँका नहीं करेंगे । भूल हो गयी, बापजी ! मुझसे भूल हो गयी ।'

फिर तो उसने अपने साथियोंको आदेश दिया—'अरे, देख क्या रहे हो ? ढकेलो न इस खटारेको अपने घरकी ओर ।' तुरंत ही सब ढकेलने लगे । वहाँका इनका अतिथि-सत्कार तो मुझसे कभी भुलाया ही नहीं जा सकेगा । सबेरे, जीवनमें कभी नहीं पिया हो, ऐसा गरमागरम बढ़िया दूध पीनेको दिया । रातको तो पता नहीं लगा, परंतु सबेरे पिताजीने ग्रामको पहचान लिया । वे स्वयं एक बार यहाँ एक गायको बछड़ा जनाने आये थे । इस बातको कहते हुए सरदार बोला—'तुम सच कहते हो । तुम मेरे ही घर आये थे । तुम भूल गये होगे, पर हम नहीं भूलते । उपकार करनेवालेका गुण भूलें तो नरकमें जाना पड़े ।'

इसके बाद उसने दुपहरको भोजन करके जानेके लिये कहा; परंतु जब हमलोगोंने जानेका पक्का निश्चय बताया, तब उसने हमारी जीपको मुख्य सड़कतक ढकेलवा दिया । वहाँसे जाती हुई एक ट्रोलीके पीछे बाँधकर हमलोग अपनी जीप ले गये ।

—श्रीधर कृपालु आयंगर

'अखण्ड आनन्द' ।

पानवालेकी ईमानदारी

बात गत १ अगस्तकी है। मैं छुट्टियाँ समाप्तकर कानपुर पढ़नेके लिये जा रहा था। मेरे साथ मेरे कक्कू (चाचाजी) थे। वे कानपुर कपड़ा खरीदने जा रहे थे। उनके पास ५५०) रुपये थे तथा ५०) मेरे भी थे। सम्पूर्ण ६००) की रकम एक झोलेमें थी। ज्यों ही हम दोनों स्टेशनपर पहुँचे कि भगवान्‌की अनुकम्पासे बस भी आ गयी। मैं शीघ्रतासे बसपर चढ़ गया और कक्कू भी पान खाकर आ गये। परंतु उनके हाथमें झोला नहीं था। इस बातका ध्यान न उन्हें था और न मुझे। बस जब धीरे-धीरे रेंगने लगी, तब वह पानवाला, जिसकी दुकानपर कक्कूने पान खाया था, दौड़ता दिखायी दिया। वह बस रुकवानेके लिये चिल्ला रहा था। जब बस रुकी, तब वह हाँफता हुआ आया और बोला—'दादा!

यह आप अपना झोला लीजिये और अपना सामान देख लीजिये।' झोलेका नाम सुनकर और अपने पास न देखकर हम दोनों सन्न रह गये। पानवालेका नाम वेदपाल था। वेदपालने कहा, 'जब आप पान खाकर बसपर चढ़े, तब झोला मेरी दूकानपर भूल गये। जब बस चलनेको हुई, तब मैंने झोला देखा। खोला तो रकम देखकर सन्न रह गया और मैं उसी समय झोला उठाकर बसकी तरफ दौड़ा और आप मिल गये।'

उसकी इस ईमानदारीको देखकर हम दोनों उसके प्रति इतने कृतज्ञ तथा प्रेम-विह्वल हुए कि मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकला। अन्तमें कक्कू अपनेको संयतकर उसे दस रुपये देने लगे। तब वह बड़ी नम्रतासे बोला—'दादा! यह तो मेरा कर्तव्य था। कहीं कर्तव्य करनेपर पुरस्कारकी आवश्यकता होती है?' मैं उसकी इस ईमानदारीपर इतना मुग्ध हुआ कि मुझसे बोलातक नहीं गया और मैंने यह भी नहीं जाना कि वह कब चला गया। बादको जब कक्कू लौटकर स्टेशन पहुँचे और वेदपालके बारेमें जानकारी की, तब यह भी ज्ञात हुआ कि इसी वर्ष जूनमें उसका घर आगसे भस्म हो गया था।

धन्य है उसकी नेकनीयतको। उसे रुपयेकी इतनी आवश्यकता थी, फिर भी उसने छः सौ रुपयेके लोभका सहज ही संवरण कर लिया। यह आजके युगमें असाधारण बात है। सबको इससे शिक्षा लेनी चाहिये। —दिवाकरप्रकाश त्रिपाठी

ईमानदारी तथा सहृदयताका आदर्श

कुछ समय पहलेकी बात है। एक अच्छे फर्ममें अकस्मात् घाटा लगा। लड़कीका ब्याह था। सम्पन्न घरसे सम्बन्ध हुआ था, पर घाटा लग जानेके कारण विवाहके लिये रुपये नहीं रह गये। घरमें ठोस सोनेका गहना था। एक नेक मित्रके यहाँ चुपके-से बंधक रखकर अठारह हजार रुपये लाये गये। कोई लिखा-पढ़ी आपसमें नहीं की गयी। केवल गहना तौलकर एक सादे कागजपर लिख दिया कि इतने तोले सोनेका गहना है और अठारह हजारका हैंडनोट लिखकर दे दिया। जिनके यहाँ गहना रक्खा गया, उनसे कुछ भी नहीं लिखवाया। उन्होंने रुपये बहीमें नाम लिख लिये और सोनेके वजनका वह पन्ना गहनेके डिब्बोंमें रखकर डिब्बे तिजूरीमें रख दिये। कन्याका विवाह इज्जत-प्रतिष्ठाके साथ भली-भाँति सम्पन्न हो गया। कुछ वर्षोंके बाद दैव-दुर्विपाकसे गहना बंधक रखकर रुपये लेनेवाले सज्जनका देहान्त हो गया। घर तो गरीब हो ही चुका था। पर उनके कोई पुत्र नहीं था। दो कन्याएँ

अविवाहित और थीं। कन्याओंकी माता बचे हुए गहनेको बेच-बेचकर तथा एक मकान छोटा-सा बचा था, उसके किरायेसे काम चलाती थी। कुछ दिनों बाद तो उसके खर्चेकी व्यवस्था भगवत्कृपासे हो गयी थी। पर कन्याओंके विवाहके लिये उसके पास पैसे नहीं थे। वह बड़ी ही चिन्तित थी। पतिने गहने बंधक रखनेकी बात पत्नीसे नहीं कही थी। यही कह दिया था कि गहना बेचकर रुपये लाये गये हैं। अतः उसको पता भी नहीं था कि कहीं किसीके यहाँ गहना बंधक रक्खा है।

रुपये देकर गहने बंधक रखनेवाले महाजनको ब्याज भी नहीं मिला, पर सोनेका भाव क्रमशः बढ़ रहा था। उनके हाथकी लिखा-पढ़ी कहीं थी नहीं। वे बेईमानी करना चाहते तो बढ़े भावका सारा सोना हड़प जाते तथा हैंडनोटके आधारपर वहीमें लिखे रुपयोंके लिये नालिश करके कर्जदारका छोटा मकान नीलाम करवा सकते थे, उसके घरके सामानपर कुर्की ले जा सकते थे। पर भगवान्की कृपासे उनकी बुद्धिमें बुराई नहीं आयी।

उन्होंने किसीसे कुछ बताया तो नहीं, पर मनमें निश्चय कर लिया कि 'सोनेका भाव बढ़ा है, अतएव यह लाभ जिसका सोना है, उसीको मिलेगा। उनकी पत्नी तथा लड़कियाँ तकलीफ न पावें, इसकी व्यवस्था करनी है और दोनों कन्याओंके विवाहके समय पूरा गहना उन्हें लौटा देना है।' इस निश्चयके अनुसार ही उन्होंने मासिक डेढ़ सौ रुपये कन्याओंकी माताको प्रतिमास मनीआर्डरसे, भेजनेवालेका फर्जी नाम-पता देकर, भेजनेकी व्यवस्था

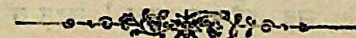
कर दी। जबतक यह व्यवस्था नहीं हुई, तबतक तो कष्ट रहा; व्यवस्था होनेके बाद उसका कष्ट दूर हो गया था। पर वह बहुत चेष्टा करनेपर भी पता नहीं लगा सकी थी कि रुपये कहाँसे नियमित रूपसे प्रतिमास आ रहे हैं।

वे सज्जन इतना ही नहीं करते थे, उसके घरकी सारी खोज-खबर रखते और जब कभी कोई आवश्यकता देखते, तब उसकी पूर्तिकी व्यवस्था किसी तरह करवा देते। लड़कियोंकी अवस्था विवाहके योग्य हो गयी। माता बड़ी चिन्तित थी, पर ये निश्चेष्ट नहीं थे। इन्होंने दो अच्छे सम्पन्न घरके लड़के ढूँढ़कर अपनी ओरसे बातचीत की तथा यह बताकर कि लड़कियोंकी माँके पास काफी पैसा है, वे बहुत अच्छी तरह विवाह करेंगी, उनके अभिभावकोंको राजी कर लिया। जब यह काम हो गया, तब एक दिन गहनोंके डिब्बे लेकर वे उसके घर पहुँचे। वह इनको पहचानती थी, पतिके मित्र थे! परंतु ये एक बार उसके पतिके मरनेपर बैठनेको उसके घर गये थे, फिर कभी गये ही नहीं। आज अकस्मात् इनको घर आया जानकर वह सहम गयी। इन्होंने लड़कियोंको बाहर बुलाकर कहा—'बेटी! मुझे तुम्हारी माँसे कुछ बात करनी है। तुमलोग पास बैठी रहो तो मैं उनसे बात करूँ।' लड़कियोंके कहनेसे माँ राजी हो गयी। ये गये—दूरसे प्रणाम किया; क्योंकि वह उम्रमें बड़ी थी। इन्होंने कहा—'माजी! आप मेरे बड़े मित्रकी पत्नी हो, अतः मेरी माँके समान हो; मेरी बात सुनो!' इतना कहकर इन्होंने सारा हाल बताकर

प्रार्थना की—'अब यह आपका सोना लगभग पचासी हजारसे ऊपरका है। आप इसे सँभालो और आपकी आज्ञा हो तो इसमेंसे चालीस हजार लगभगका गहना बेचकर दोनों लड़कियोंका विवाह कर दिया जाय। बाकी गहना भी बेचकर रुपये कर लिये जायँ तो उनका ब्याज मैं दूँगा। आपके कोई दौहित्र हो जाय तो उसे गोद ले लेना। लड़कियोंके सम्बन्धकी बात अमुक-अमुकके यहाँ पक्की हो गयी है। अमुक तिथिको टीका दे दिया जायगा।'

लड़कियोंकी माता तो यह कल्पनातीत बात सुनकर मानो दूसरे ही लोकमें पहुँच गयी। उसके तथा दोनों सयानी लड़कियोंके आनन्दका क्या ठिकाना। कन्याकी माताने कृतज्ञताके आँसू बहाते हुए कहा—'भाईजी! मेरे पास शब्द नहीं हैं, मैं आपसे क्या कहूँ। आपको जैसा जँचे, वैसा ही कीजिये।' गहना बेच दिया गया। अठासी हजार सात सौ रुपये उठे! दोनों कन्याओंका विवाह धूम-धामसे हो गया। सब लोग चकित रह गये। इन्होंने विवाहकी सारी व्यवस्था कर दी, पर स्वयं विवाहोंमें केवल वैसे ही भाग लिया, जैसे मित्र-बन्धु, नाते-रिश्तेदार लेते हैं। कहीं भी विशेषता नहीं दिखायी। इन्होंने कोई उपकार किया है, यह बात ये किसीको कहते तो कैसे, घरवालोंको भी पता नहीं लगा। असलमें इनके भले मनमें ही ऐसी कोई बात नहीं थी कि जिससे ये कहीं उपकार जनानेकी कल्पना भी करते! धन्य! (नाम-पते जानकर ही नहीं लिखे गये हैं।)

—श्रीनिवास गुप्त



बुराईके बदले भलाई

कुछ पुरानी बात है। दो भाई थे। छोटा भाई प्रायः बीमार रहता। उसका विवाह हो गया था। माता-पिता जीते रहे, तबतक तो छोटे भाईकी पत्नीको कोई तकलीफ नहीं हुई। व्यापारका सारा काम बड़े भाई ही देखते थे। पर माता-पिताके मरते ही पत्नीके समझाने-बुझानेसे बड़े भाईका मन बिगड़ा। इधर छोटे भाईका देहान्त हो चुका था, उसके एक छोटा-सा बच्चा था। बड़े भाईने छोटे भाईकी पत्नीको अलग कर दिया। बड़े भाईकी पत्नीने समझाया था, 'जब कोई काम नहीं देखता, तब व्यापारमें हिस्सा कैसा ? जायदाद बाँटकर अलग कर दो।' जायदादमें छोटे भाईकी स्त्रीको दिये गये तीन हजार रुपये नकद, इसमें दो हजार तो उसके नैहरसे आये हुए थे, एक टूटा-सा दो-तीन कमरेका मकान, कुछ बर्तन तथा कपड़े आदि। बाकी सब कुछ बड़े भाईने रख लिया। बेचारी स्त्रीकी कौन सुनता। वह संतोष करके अपने बच्चेका पालन-पोषण करने लगी। बड़ी बुद्धिमती थी। तीन हजार रुपयोंसे अनाजका व्यापार करने लगी—भगवत्कृपासे प्रतिवर्ष रकम बढ़ने लगी। उसने बहुत ही कम खर्च करके बच्चेको पाला, पढ़ाया, बड़ा किया। उसका विवाह भी कर दिया। बड़े भाईने कोई मदद नहीं की। बड़े भाई बहुत खर्चीले थे, उनके लड़के भी वैसे ही निकले। सब शौकीन बाबू ! काम कौन करे। भाग्य

पल्टा। उनका दीवाला निकल गया। इधर छोटे भाईका लड़का माताकी बुद्धिमत्तासे पल-पुसकर व्यापार करने लगा और खूब सम्पन्न हो गया। एक दिन उसे पता लगा, ताऊजीका बड़ा लड़का बीमार है, उसे टी० बी० हो गयी है तथा एक पावनेदारने डिग्री करवाकर कुर्की भेज दी है। बच्चा कठिन रोगग्रस्त और सामानपर कुर्की। सुनते ही उससे नहीं रहा गया। उसने जाकर ताऊजीके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'ताऊजी! आप कष्ट न पावें, आपके दिये हुए तीन हजार रुपये ही मेरी सम्पन्नताके मूल हैं। आपने कृपापूर्वक ये रुपये न दिये होते तो पता नहीं, माँकी तथा मेरी क्या स्थिति होती। यह सब आपकी उदारता तथा आशीर्वादका ही फल है।' यों कहकर वह रोने लगा। ताऊजी भी रो पड़े। ताईका मन भी बदला। वह सकुचा तो गयी पर उसकी आँखें भी इस सद्व्यवहारसे बरस पड़ीं। लड़केने कहा—'ताऊजी! मेरे पास जो कुछ है, सब आपका है। आप घर सँभालिये, मुझे पालिये-पोसिये।' उसने डिग्रीके साढ़े ग्यारह हजार रुपये तुरंत भर दिये। भाईका इलाज कराया। वह अच्छा हो गया। ताऊजी साथ नहीं हुए, उन्हें बड़ा संकोच था। तब उसने पचास हजार रुपये देकर उनको अलग व्यापार करा दिया। उनका काम अच्छी तरह चल निकला। दुःख पाये हुए थे। सँभलकर चले। कुछ दिनोंमें सुखी हो गये। छोटे भाईके लड़केको कितने आशीर्वाद उन पति-पत्नीने दिये, इसकी सीमा नहीं है। धन्य!

—रामकुमार अग्रवाल

विशाल हृदय

मेरे दादाके जीवनमें बना हुआ यह एक प्रेरक प्रसंग है। सतरहवें वर्षमें मैट्रिक पास करके उन्होंने एक प्राइवेट संस्थामें नौकरी करनेके लिये अर्जी दी। इस जगहके लिये सात-आठ अर्जियाँ आयी थीं, परंतु पहचान तथा सिफारिशके कारण मेरे दादाकी नियुक्तिका निश्चय हो गया। इस जगहके लिये मेरे दादाके एक सुपरिचित मित्र भी उम्मेदवार थे और इंटरव्यूमें उन्होंने मेरे दादाकी अपेक्षा अपनी अधिक योग्यता भी सिद्ध कर दी थी, पर परिचय-सिफारिशके अभावमें वे नहीं लिये गये। उनको बड़ी जरूरत थी, परंतु उन्होंने कई जगह ऐसा ही कटु अनुभव प्राप्त किया था। इंटरव्यूसे बाहर निकलते ही मेरे दादासे उन्होंने कहा—

'तुमको तो यह नौकरी मिल ही जायगी। परंतु तुम्हें पता हैं कि मुझे नौकरीकी कितनी अधिक आवश्यकता हैं, अतः मेरे लिये कहीं दूसरी जगह प्रयत्न करना।'

इनकी परिस्थितिको दादा जानते थे। उन्होंने मनमें कुछ निर्णय करके कहा—'तुम्हारे लिये मैं जरूर प्रयत्न करूँगा।'

अपने किये हुए निर्णयको कार्यमें परिणत करनेके लिये दूसरे दिन मेरे दादाने संस्थाके अधिकारी साहेबके पास जाकर अपना निर्णय सुनाया। उसे सुनकर साहेब अचरजमें भर गये और बोले—'ऐसी नौकरी तुम्हें फिर नहीं मिलेगी, तुम अब भी विचार करो।'

'ईश्वरकी कृपासे मैं दो पैसेसे सुखी हूँ। फिर जान-पहचान तथा सिफारिशसे मैं तो और किसी जगह भी नौकरी पा जाऊँगा; परंतु मेरा वह मित्र अभावमें है, उसे इसी समय नौकरीकी खास जरूरत है। फिर मुझे लगता हैं कि मेरी अपेक्षा वह आपका काम भी अच्छी तरह कर सकेगा।' मेरे दादाने कहा।

परिणामस्वरूप दूसरे दिन मेरे दादाको मिलनेवाला नियुक्तिका आदेश उनके मित्रके हाथमें जा पहुँचा। मित्र तो अपने नामका नियुक्तिपत्र देखकर आश्चर्यमें डूब गये।

मेरे दादाने इस सम्बन्धमें अपने मित्रको कुछ भी जानकारी नहीं होने दी! 'अखण्ड आनन्द'

—'आसोपालव'

तिलकने चोरोंसे बचाया

लगभग तीन वर्ष पहलेकी घटना है । मैं पूनासे नासिक जा रहा था । कल्याण स्टेशनके अगले स्टेशनपर हमारी गाड़ी रुकी, उस समय रात्रिका प्रायः डेढ़ बजा था । मैं बैठा था । गाड़ीने सीटी दी कि तुरंत छः चोर हमारे डिब्बेमें आ घुसे । डिब्बेमें और सब सो रहे थे । केवल मैं ही जाग रहा था । छः चोरोंको देखकर मैं कुछ बोला नहीं और नींदका स्वाँग बनाकर पाटियेपर सो गया । चोरोंने इधर-उधर देखा, फिर वे आपसमें बात करने लगे कि 'इसके माथेपर तिलक है इसलिये यह कोई साधु-महात्मा होगा । इसको मत छूना ।' अतएव उन्होंने मेरा तो स्पर्श ही नहीं किया । न मेरी कोई चीज ही ली । मेरी जेबमें उस समय चार हजारके नोट थे । उन्होंने औरोंकी चीजें चुरायीं पर भगवान्का गन्ध (तिलक) मस्तकपर होनेके कारण मेरे हाथ भी नहीं लगाया । इस प्रकार तिलक (वैष्णवके वेष) ने मुझे बचा दिया । सच्चा वैष्णव होनेपर तो पता नहीं, क्या लाभ होता है ।

—रामचन्द्र शिवराम बूव

महात्माकी शान्ति

अभी कुछ ही दिनों पहलेकी बात है—मैं एम०के० रोड ट्रान्सपोर्टद्वारा वैजनाथसे आ रहा था। मेरे साथ एक सज्जन और थे। वे सिगरेट बहुत ज्यादा पीते थे। जब हमलोग काँगड़ा पहुँचे, तब एक भगुआ वस्त्रधारी संत भी मोटरमें आकर बैठ गये। हमारे ही पीछेवाली सीट उन्हें मिली थी। संतजी सिगरेटके धुएँसे कुछ घबरा रहे थे। मेरे साथीसे उन्होंने विनयके साथ कहा कि 'आप यदि सिगरेटका धुआँ बाहरकी ओर फेंकें तो बड़ी कृपा होगी।' साथीने उनके कथनकी कुछ भी परवा नहीं की। महात्माजी शान्त रहे—उन्हें दूसरी सीट भी नहीं मिल सकी। पर उन्होंने मेरे साथीसे फिर कुछ नहीं कहा, धुआँ खूब था। मैं भी बीच-बीचमें कस लगा रहा था। अतः सिगरेटके गंदे धुएँसे दुखी होकर एक सरदार साहब हम दोनोंपर उबल पड़े। साथ ही कंडक्टरसे भी उन्होंने कहा कि 'गाड़ीमें सिगरेट पीनेवालोंको रोको।' मेरे साथी श्रीलालाजी ऊन खरीदनेके सिलसिलेमें आये थे, काम ठीक तरहसे तय नहीं हो सका था। अतः वे क्रोधमें भरे सिगरेट पी रहे थे और इसपर सरदारजीका बिगड़ जाना तो उन्हें घावपर नमककी तरह काम कर गया। सरदारजी कोई बहुत बड़े मिलिटरी अफसर प्रतीत होते थे, अतः उनपर तो हमारे साथी लालाजीका कुछ बस चला नहीं। वे बेचारे महात्माजीपर बिगड़कर 'हरामजादे, बदतमीज, मँगते, चोर कहींके, लाल कपड़े पहनकर रोटी माँग खाते, पैसे माँगते, मोटरमें आकर बैठ गये।' आदि दुर्वचन बकने लगे। संतजी मुसकरा रहे थे। उन्होंने कुछ

भी उत्तर नहीं दिया। लालाजीने और भी 'बेशरम' आदि कहा, पर जैसे संतजीने कुछ सुना ही नहीं, ऐसे वे चुप रहे। खैर, जिस समय हम पठानकोट पहुँचे, उस समय सभी लोग तेजीसे उतरना चाहते थे। इतनेमें पता नहीं किस तरहसे हमारे साथी लालाजीसे उनका मनीवेग गिर गया। संतजी अन्तमें उतरे होंगे। उन्होंने मनीबेग उठाया और खोलकर देखा तो उसमें लालाजीका छायाचित्र सबसे पहले खानेपर लगा था। महात्माजी जान गये कि बटुवा लालाजीका है। उन्होंने किसीसे कुछ भी नहीं कहा और वे हमलोगोंके पीछे-पीछे तेजीसे चलने लगे एवं आवाज भी लगायी। मैंने मुड़कर देखा कि वे हमारी ही ओर तेजीसे चले आ रहे हैं, एक हाथमें कमण्डलु था और दूसरेमें उनका अपना बेग। मैंने देखा तुरंत ही चार-पाँच शिक्षित सज्जनोंने आकर उनके पैर छुये और उनसे सामान लेने लगे।

उन्होंने अपना बेग एक सज्जनको दे दिया और स्वयं कमण्डलु लिये हमारी ओर बढ़ने लगे। हमलोग भी अब कुछ सोचने लगे कि ये वास्तवमें ही कोई संत हैं। और भी कई लोग इन्हें हाथ जोड़ रहे थे। ये उन्हें उत्तर देते हुए हमारी तरफ आ रहे थे। समीप आते ही मैंने पूछा—'क्या आज्ञा है, महाराज!' संतजीने लालाजीसे पूछा—'आपका मनीबेग आपके पास है या नहीं?' लालाजीने जेबमें हाथ डाला और नीचेसे ऊपरतक काँप उठे। महात्माजी फिर बोले, 'क्या था उसमें?' लालाजी सकपकाये बोले—'जी, जी, उसमें लगभग १७०० रुपये थे, मैं दिल्लीसे आ

रहा हूँ, ऊन खरीदनी थी ।' महात्माजीने कमण्डलुसे मनीबेग निकालकर लालाजीके हाथपर रख दिया और वे चलने लगे। रुपये गिने गये तो सौ-सौके सत्रह नोट थे।

लालाजीकी स्थिति विचित्र थी। काटो तो खून नहीं। दौड़कर लालाजीने संतजीके पैर पकड़ लिये। उनके नेत्र भर आये। कहने लगे, 'आप ही स्वामी ×××× हैं। मैंने तो ठीकसे पहले आपकी ओर देखा भी नहीं था। आप अब कृपया मुझे क्षमा करें।' फिर लालाजीने मुझसे स्वामीजीका परिचय कराया।

उनसे सत्संग करनेपर हमलोग समझे कि वास्तविक सच्चा मानव-जीवन तो इनका है। हमारा क्या जीवन है जो दिन-रात व्यर्थके कामोंमें नष्ट हो रहा है। फिर हमलोगोंने प्रतिज्ञा की कि 'आजके बाद चाहे कोई किसी भी रूपमें हो, हम उसे अवहेलनापूर्ण दृष्टिसे नहीं देखेंगे और न किसीका अपमान करेंगे।' श्रीमहाराजजीने परमात्म-चिन्तनकी एवं धूम्रपान त्याग करनेकी भी हमसे प्रतिज्ञा करवायी—'धन्य है ऐसी विभूतियोंको।' लाख प्रयत्न करनेपर भी उन्होंने हमारा कुछ भी स्वीकार नहीं किया। कहा कि 'जब आवश्यकता होगी तब देखा जायगा।' केवल बीस मिनटमें ही संतजी चले गये। बीस मिनटके सत्संगने ही हमारे जीवनको बहुत बदल दिया। आज भी मुझे उनकी कुछ बातें याद आ रही हैं एवं उससे परम शान्ति मिल रही है।

—गोपालकृष्ण बी० ए०, एल्-एल्० बी०



सहृदयता

लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। कलकत्तेके एक साधारण व्यापारी रामगोपाल थे। उस समय थोड़े खर्चमें घरका काम चल जाता था, चीजें सस्ती थीं और झूठी शान दिखानेकी लोगोंमें आदत नहीं थी। इसलिये बहुत अधिक पैसोंकी न लोगोंको आवश्यकता थी, न लालसा। रामगोपालकी साधारण दूकानमें खर्च बाद देकर दो-ढाई हजार रुपये सालाना बचत हो जाती थी। इतनेमें ये परम संतुष्ट थे।

एक बार अकस्मात् एक फर्म फेल हो जानेसे इनके बहत्तर सौ रुपये उसमें डूब गये। इनके घरकी पूँजी तो थी नहीं। घरका खर्च चलता था और व्यापारमें देना-पावना रहता था। इनको लगभग दस हजार रुपये देने थे, इतने ही लोगोंमें लेने थे। परंतु सात हजारसे अधिक रुपये एक ही साथ डूब जानेसे इनको रुपये देने तो ज्यों-के-त्यों बने रहे। लेने नहीं रहे। इतने रुपये ये महाजनोंको कहाँसे दें। घरमें कुछ गहना था। साध्वी पत्नीने गहना दे दिया—बेचकर ये पाँच हजार रुपये सोनापट्टीसे लाये। एक महाजनके यहाँ भेज ही रहे थे कि इसी बीचमें इनके देशके पड़ोसी एक सज्जन अचानक इनकी दूकानपर पहुँचे। ये उनसे कुशल-प्रश्न कर ही रहे थे कि वे बुरी तरह रोने लगे—पूछनेपर उन्होंने बताया कि छोटी लड़कीके ब्याहमें जहाँसे रुपयेकी व्यवस्था की गयी थी, वहाँसे रुपये न आनेसे रुपयोंकी जरूरत पड़ी, समय था नहीं, अतएव बड़ी लड़कीका गहना बंधक रखकर रुपये विवाहमें लगा दिये। बड़ी लड़की ससुरालसे आयी हुई थी। अब वह ससुराल जा रही है। उसके ससुरालवालोंको संदेह हो गया है कि गहना इन्होंने अपने

काममें ले लिया है। वे आकर बैठ गये हैं। अब उन्हें गहना नहीं दिया जायगा तो इज्जत तो जायगी ही, वे पुलिसकेस करेंगे। लड़कीका जीवन भी अत्यन्त दुखी हो जायगा। किसी तरह भी पाँच हजार रुपये मिल जाते तो मेरे प्राण बचते।'

पड़ोसीकी बात सुनकर रामगोपालका हृदय द्रवित हो गया। इन्होंने सोचा, मुझसे ज्यादा जरूरत इस समय इनको है और यह सोचकर तुरंत पाँच हजार रुपये उनको दे दिये। उनकी इज्जत बच गयी। उन्होंने गहना छुड़ाकर लड़कीको विदा कर दिया। लड़कीके ससुरालवाले शर्मिन्दा हो गये—सोचा, हमने मिथ्या ही भले आदमीपर गरीब होनेके नाते संदेह करके बड़ा पाप किया।

रामगोपालजीको बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। महाजनोंका कड़ा तकाजा शुरू हो गया; परंतु इनके मनमें अपनी सहृदयतापर पूर्ण संतोष था और ये प्रत्येक घोर-से-घोर कठिनाईका सामना करनेको तैयार थे। आखिर इन्होंने देशमें अपने मकानके पासका नोहरा बेचकर काम निकाला। महाजनके रुपये चुका दिये। इनको दुखिया पड़ोसीका इतना हार्दिक आशीर्वाद मिला कि कुछ ही दिनों बाद भगवत्कृपासे इनके डूबे रुपये भी आ गये। कमाई भी अकस्मात् आशातीत हो गयी। दो ही सालमें इनकी स्थिति बहुत अच्छी हो गयी। उधर पड़ोसी सज्जनने भी रुपये पैदा किये। अतएव वे भी रुपये लौटा गये। भलेका अन्तमें फल भला ही होता है।

—मदनलाल अग्रवाल

मानस-चौपाईका चमत्कार

गत वर्ष मैंने बी० एस्-सी० की परीक्षा पास की थी। घरके सभी लोगोंका आग्रह था कि मैं इंजीनियरिंगमें जाऊँ। आखिर अच्छे नम्बर आनेके कारणसे मेरा दाखला मैकेनिकल इंजीनियरिंगमें हो भी गया। किंतु दुर्भाग्यवश नेत्रोंकी कमजोरी और शारीरिक दुर्बलताके कारण मैं उसमें नहीं चल सका और अन्तमें हताश होकर डेढ़ महीने बाद सितम्बरमें मुझे इंजीनियरिंग कालेज छोड़ना पड़ा। अब मेरे लिये चारों ओर अन्धकार था। एम्० एस्-सी० के Admission (दाखले) सब विद्यालयोंमें बंद हो चुके थे। किंतु ईश्वरकी कृपासे मेरा दाखला उदयपुर कालेजमें एम्०एस्-सी०(गणित) में हो गया। चूँकि कालेजमें बहुत विलम्बके बाद प्रविष्ट हुआ था, इसलिये अध्ययनमें बहुत कठिनाई पड़ी। काफी मात्रामें कोर्स पढ़ाया जा चुका था। आखिर मैंने अब भगवान्का ही सहारा लिया और 'कल्याण' में प्रकाशित एक चौपाईका मानसिक जप करना शुरू

कर दिया। 'कल्याण' में तो जपकी बहुत विधि लिखी थी, किंतु मैंने मानसिक जप ही किया था। इस चौपाईके बारेमें 'कल्याण' में यह भी छपा था कि यह परीक्षामें पास होनेका मन्त्र है। अस्तु, परीक्षाके दिन आ गये। मैंने यथासाध्य अध्ययन भी खूब किया। एम्० एस्-सी०में चार प्रश्नपत्र होते हैं। दूसरे नम्बरका प्रश्नपत्र जो गणितकी एक शाखा (Calcutus) का होता है, इतना कठिन आया कि बहुत-से विद्यार्थियोंने तो श्रेणी बिगड़नेकी आशङ्कासे आगे परीक्षा ही नहीं दी। वैसे भी एम्०एस्-सी० (गणित) इतना कठिन विषय है कि विद्यार्थी एक श्रेणीमें दो वर्ष लगाते हैं। मैंने अब ईश्वरको ही एकमात्र सहारा माना और चौपाईका जप करके दोनों अन्तिम प्रश्नपत्रोंको भी दे डाला। वे दोनों काफी अच्छे हुए। जब परिणाम घोषित हुआ, तब विश्वविद्यालयमें सिर्फ करीब ४९% प्रतिशत परिणाम रहा और मेरे नम्बर प्रथम श्रेणीमें थे। मैं तो अपनेको प्रथम श्रेणीका आना उस मन्त्रका ही चमत्कार समझता हूँ। अतः इस अनुभवके आधारपर मेरा विद्यार्थीवर्गसे निवेदन है कि वे पूरा अध्ययन तो अवश्य करें, पर परीक्षामें कभी हताश न हों और दृढ निश्चयके साथ निम्न चौपाईका जप करके परीक्षामें बैठें। ईश्वर उन्हें अवश्य सफलता देगा। चौपाई यह है—

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥

—श्यामभनोहर व्यास बी०एस्०-सी०

एकान्तरा ज्वरका सफल यन्त्र

'कल्याण' में मैंने सर्पदंशपर पीपलके पत्तोंका प्रयोग पढ़ा। अत्यन्त प्रसन्नता हुई।*

मैं भी आज एक सफल प्रयोग 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। आशा है इससे लोगोंका बहुत लाभ होगा।

यह यन्त्र पीपलके पत्तेमें लिखकर दाहिने हाथकी कलाईपर बाँध दे। मंगलवार या रविवारका दिन हो। बस, उसी दिनसे कैसा भी कितने दिनका भी अंतरा (एकान्तरा) ज्वर क्यों न हो, नहीं आयेगा। कदाचित् बाँधनेके दिन आ भी गया तो दूसरी पारीसे बिल्कुल नहीं आयेगा। मंगल या रविवारके दिन अगर पारी हो तो उसी दिन बाँधे। पत्तेको पाँचवें दिन खोलकर किसी कूएँमें फेंक दे, किसीका पैर पड़े ऐसी जगह या गंदी जगह न फेंके।

ह्रीं	८	१	६	ह्रीं
		५	७	
ह्रीं	४	९	२	ह्रीं

यह प्रयोग हमारे पूज्य पिताजी राममनोहरजी मिश्र, मु० मढ़ी, पोस्ट—कनैली, जिला इलाहाबादका अनुभूत है। मैंने उन्हींसे सीखा और पचासों एकान्तरावालोंका प्रयोग करके सफलता प्राप्त की।

—दीनबन्धु मिश्र, आयुर्वेदरत्न पो० सावलीबाग (वर्धा)

---

* पीपलपत्तोंके प्रयोगसे सर्पका जहर उतर जानेके बहुत-से समाचार मिले हैं। —सम्पादक

नहरुआकी अनुभूत दवा

निम्नलिखित दवा हमारी भलीभाँति परीक्षित है तथा हजारों-हजारों रोगियोंको इससे पूरा आराम मिल चुका है। 'कल्याण' के पाठकोंके लाभार्थ उसे यहाँ लिखा जा रहा है।

नहरुआ बड़ा कठिन तथा कष्टप्रद रोग है। यह अधिकतर राजस्थानमें हुआ करता है। इसका अचूक इलाज है और हजारों लोगोंपर इसका सफल प्रयोग किया जा चुका है। हमारे यहाँ

नवलगढ़में दूर-दूरसे लोग इस दवाको लेने आते थे। दवा यह है—सफेद कलीका चूना (चूना टुकड़ा जो पान वगैरहके काममें आता है) के बड़े-बड़े अच्छे टुकड़े और असली तिलका तेल—(जितने तेलमें जितने टुकड़े पीसे जा सकें) दोनोंको खरलमें खूब महीन पीस लें, जिससे वह मल्हम-जैसी बन जाय। दवा जितनी अधिक घोटी जायगी, उतनी ही अधिक लाभप्रद होगी। दवा लगानेकी विधि यह है—आकका पीला पत्ता लेकर उसपर थोड़ी-सी मल्हम लगाकर जहाँ नहरुआका मुँह हो, वहाँ दवा लगाकर उस पत्तेको रखकर ऊपरसे १०।१५ आकके हरे पत्ते रखकर मजबूत पट्टी बाँध दें। तीन दिन बाद पट्टी खोलें। ईश्वरकी कृपासे एक ही बारमें पूरा आराम हो जायगा। यदि पूरा आराम न हो तो एक बार फिर इसी तरह दवा लगाकर बाँध दें और तीसरे दिन खोलें। निश्चित ही रोग नष्ट हो जायगा। नहरुआपर पानी न लगने पाये। दवा मुँहपर लगानी चाहिये, ऊपरसे पीला पत्ता और उसपर हरे पत्ते रक्खे जायँ।*



—वंशीधर अग्रवाल

---

* नहरुआकी एक दूसरी दवा यह है—आधा पाव कबूतरकी बीटको अच्छी तरह पीसकर एक छटाँक किसी भी चीजके आटेमें मिलाकर चूल्हेपर पानीमें पकाया जाय। पकते समय उसमें आधा छटाँक शुद्ध तिलका तेल डाल दिया जाय। फिर जब वह पूरी तरह पक जाय तो उतारकर किसी कपड़ेपर रख लें और ठंडा होनेके बाद घावपर बाँध दें। तीन ही दिनमें नहरुआ ठीक हो जायगा।

—पीरामल

खूनी बवासीर (रक्तार्श) की दवा

रसौत एक तोला और कलमी सोरा एक तोला—दोनोंको पानीमें खूब महीन पीसकर आठ-आठ आने भरकी गोली बना लें। एक गोली प्रातःकाल और एक संध्याको ठंडे जलके साथ खिला दें। यह दो दिनोंकी दवा है। इसीसे खून बंद हो जायगा। न हो तो, दो दिन इसी प्रकार और दे दें। गुड़, लाल मिर्च, खटाई, तेल कतई न खायें। यह भी हजारों रोगियोंपर अनुभूत है।

—वंशीधर अग्रवाल, पयागपुर (बहराइच)

बुराईके बदले भलाई—हृदय-परिवर्तन

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। बाबू रामानन्दके बगलमें ही एक सोनारका घर था। सोनार बहुत अच्छा आदमी था, उसकी पत्नी भी साध्वी थी, पर पता नहीं, क्यों बाबू रामानन्दको सोनारके प्रति द्वेष हो गया था। वे चाहे जिससे उसकी निन्दा करते। कोई भी गहना बनवाने आते तो रामानन्द उसकी बेईमानी-चोरी बताकर उसमेंसे कइयोंको लौटा देते। पर वास्तवमें सोनार बड़ा ही ईमानदार था। इससे उसकी बहुत अच्छी साख थी। रामानन्दके विपरीत प्रयत्नपर भी उसको बहुत काम मिलता। उसकी लड़कीका व्याह था। पड़ोसीकी सहायता करना तो दूर रहा, रामानन्दने अपने दुष्ट स्वभाववश विवाहमें भी कई तरहके विघ्न डाले। बरातियोंका अपमान कराया। उन्हें भड़काया भी। विवाह किसी तरह हो गया। पर सोनारने न कुछ बुरा माना, न रामानन्दका प्रतिकार किया और रामानन्दके साथ व्यवहारमें भी कहीं रूक्षता-कटुता नहीं आने दी। वह वैसे ही विनम्र तथा निश्चल बना रहा। एक दिन रामानन्दने कुछ दे-लेकर गुंडेके द्वारा

राह चलते सोनारको गालियाँ दिलवायीं और उसे मरवाया। उसके घर तथा दूकानपर एक दिन गंदा कूड़ा गिरवा दिया। इस तरह अपनी ओरसे रामानन्दने सोनारको नुकसान तथा कष्ट पहुँचानेमें कोई बात उठा नहीं रक्खी। पर सोनार सहज ही शान्त रहा।

एक रात्रिकी बात थी, रामानन्द कहीं बाहर गया हुआ था। घरमें उसकी स्त्री तथा बालक अकेले थे; चोरोंने सुअवसर देखकर रामानन्दके घरमें सेंध लगायी। वह धनी था। हजारों रुपये नकद उसके घरमें रहते और गिरवी रक्खा हुआ तथा अपना हजारों रुपयेका गहना भी उसके घरमें था। ठीक उसी समय सोनारकी पत्नी जाग गयी। उसने पतिको जगाया। तबतक सेंध लगाकर एक चोर अंदर घुस गया था। दो बाहर खड़े थे। उजियाली सुनसान रात थी। माल भी बाहर निकाल लिया था। नकद रुपये तथा बहुत-सा गहना था। वे भागना ही चाहते थे। सोनारने जाकर चोरोंको ललकारा। चोर वहींके जान-पहचानके थे। सोनार उन्हें पहचानता था। उन्होंने सोनारसे कहा—'तुमको तो हमारी सहायता करनी चाहिये। तुम्हें कितना रुलाता तथा कष्ट देता रहता है यह नीच रामानन्द। आज वह घर नहीं है, हमलोग सब मालमता ले जायँगे तो उसका मिजाज ठंडा हो जायगा तथा वह सीधा हो जायगा। तुम्हारे लिये तो यह खुशीकी बात है।' सोनारने कहा—'भाई! ऐसा नहीं हो सकता। हमलोगोंका आपसमें पुश्तैनी भाईचारेका सम्बन्ध है। क्या हुआ, जो भूलसे हमें वह कुछ कह-सुन लेता है; आखिर है तो हमारा पीढ़ियोंका पड़ोसी भाई ही। जबतक मेरे

शरीरमें प्राण हैं, मैं अपने देखते-जानते भाई रामानन्दका तनिक-सा भी नुकसान नहीं होने दूँगा।' चोरोंने छूरा निकालकर कहा—'बड़े धर्म पालनेवाले आये हो, हट जाओ यहाँसे, नहीं तो, अभी काम तमाम हो जायगा।'

सोनारकी स्त्री इसी बीचमें उठकर कुछ ही दूरपर एक धनी सज्जन हरचन्दरायका घर था, उसमें रातको पहरा लगा करता था, वहाँ पहुँच गयी और पहरेदारको प्रार्थना करके तुरंत थानेमें खबर करवा दी। मुहल्लेमें और लोग भी जग गये। सोनारकी स्त्रीके उद्योगसे यह सब हो गया। थानेसे पुलिसके सिपाही चले और मुहल्लेके लोग भी। इधर चोर छूरा मारनेको तैयार हुए ही थे कि सिपाही तथा और लोग समीप आ गये। चोर माल लेकर भागे। सोनारके रोकनेपर एक चोरने सोनारको छूरा मारा, पर वह भाग रहा था। सोनारने बायाँ हाथ सामने किया तो उसकी हथेलीपर कुछ चोट लगी। इतनेमें पुलिस तथा लोग आ गये। तीनों चोर मालके साथ रँगे हाथों पकड़ लिये गये। रामानन्दकी स्त्री यह सब देख रही थी। मुहल्लेके लोग सोनारका यह पवित्र भाव तथा महान् कार्य देखकर दंग रह गये। सब उसकी प्रशंसा करने लगे। सभी जानते थे कि रामानन्द वर्षोंसे निर्दोष सोनारको बेहद सता रहा था। उन्होंने उसकी स्त्रीसे कहा—'देखो, अपने पतिकी काली करतूतपर विचार करो और इस सोनारका भला काम देखो। छूरा कहीं भी लग सकता था और इसकी जान जा सकती थी। पर इसने तुम लोगोंको अपनी जान देकर भी बचाना चाहा और दोनों स्त्री-पुरुषने

मिलकर आखिर बचा ही लिया।' रामानन्दकी पत्नी रो रही थी अपने काले कारनामोंको याद करके और सोनार-दम्पतिका अनोखा त्याग तथा प्रेम देखकर। पश्चात्तापके आँसुओंने उसका सारा कलुष धो दिया।

दूसरे दिन रामानन्द लौटा। पत्नीने सारा हाल बतलाया। मुहल्लेके लोगोंने तथा पुलिसने भी बतलाया। रामानन्दका हृदय पलट गया। उसके हृदयका सारा विष सोनार-सोनारीके विलक्षण स्नेहामृतसे नष्ट हो गया। वह जाकर सोनार-सोनारीके चरणोंमें पड़ गया। उनसे रो-रोकर क्षमा माँगी, पर उनके मनमें तो कोई द्वेष था ही नहीं। उन्होंने रामानन्दको सरल हृदयसे सान्त्वना दी।

केस चला। चोरोंने अपने बयानमें सोनारके कर्तव्य-पालन, त्याग, रामानन्दके प्रति उनके सद्भाव तथा सोनारकी ठीक समयपर काम करनेवाली बुद्धि तथा बहादुरीकी बातें बतायीं। मैजिस्ट्रेटने सोनार-सोनारीकी बड़ी प्रशंसा की। चोरोंको सजा हुई। सोनारको सरकारने इनाम देना चाहा। पर सोनारने यह कहकर नहीं लिया कि 'रामानन्द मेरा भाई है। मैंने उसपर कोई उपकार थोड़े ही किया है। अपने घरको बचानेकी चेष्टा करनेमें उपकार-पुरस्कारकी कैसी बात। मैं यह न करता तो मैं कर्तव्यसे गिरता। किया तो अपने स्वार्थका काम किया—' सब लोग दंग रह गये। रामानन्द तो उसका चरणसेवक ही बन गया। परस्पर प्रेमका प्रवाह बह चला।

—हरिप्रसाद शर्मा



प्रतिशोध

हमारे मकानमें नहर विभागके ... ××××××शर्मा रहते हैं। उनसे मैंने यह घटना सुनी है। आपने बतलाया कि मैं जैगारा चौकीपर पतरौल था। जब मैं एक दिन राजवाहा जाजऊ (जि० आगरा) पर जा रहा था तो मुझे एक साधु पुलपर बैठे मिले। प्रणाम करनेके पश्चात् मैं उनके पास बैठ गया; न जाने क्यों वे महात्मा मुझसे बातें करने लगे। इसी समय मैंने उनसे उनके साधु होनेका कारण पूछा—तो उन्होंने काफी आग्रह करनेपर निम्न शब्दोंमें बतलाया—

'मैं कलकत्तेका एक महाजन था। मैं अपनी छोटी बहिनके साथ, जो उस समय १७ वर्षकी थी, एक अन्धकारमय छोटे मकानमें रहता था। खोमचेका काम करनेपर मैं इतने थोड़े पैसे कमा पाता था कि उदरपूर्ति नहीं होती थी। जीवन दुखी तथा संकटमय था।

'भगवान्‌की लीला अद्भुत है । एक रात्रिको जब हम दोनों भाई-बहिन सोनेवाले ही थे कि एक पंजाबीने मकानमें प्रवेश करते हुए रात्रिनिवासकी अनुमति माँगी । पर्याप्त अनुनय-विनयके पश्चात् हमने उसे स्वीकृति दी तथा तीनों उस तंग मकानमें सो गये तथा स्वप्नोंके संसारमें पहुँच गये । लगभग रात्रिके ११ बजे मेरी बहिनने मुझे जगाया और नोटोंका बंडल देकर कहा—'मैंने इस सम्पत्तिको उस अतिथिको मारकर प्राप्त किया है, जिससे कि हमारा जीवन सुखमय व्यतीत हो सके ।' यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया, परंतु पुलिसके भयसे मैंने शीघ्र ही एक गहरा गड्ढा खोदा और अतिथिकी लाशको उसमें रखकर मिट्टीसे दबाकर अदृश्य कर दिया । इसके अतिरिक्त चारा ही क्या था·······

'शनैः-शनैः उस सम्पत्तिसे मेरा कारोबार बढ़ा और मैं एक अच्छा व्यापारी हो गया । मेरी बहिन, इससे पहले ही कि मैं उसका विवाह कर पाता, स्वर्ग सिधार गयी । परंतु अवस्था अधिक होनेपर भी मेरा विवाह हो गया और पुत्र भी उत्पन्न हुआ । कालान्तरमें मेरी पत्नी भी चल बसी ।

'भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध होनेके कारण मेरा पुत्र (जो मेरी एक कल्पनामात्र था) दूजके चन्द्रमाकी तरह विकसित होने लगा । नवयुवक होनेपर मैंने उसका एक धनी परिवारकी सुशीला लड़कीके साथ विवाह-संस्कार कर दिया । परंतु विवाहके दो वर्ष पश्चात् मेरे पुत्रको रोगने इस प्रकार आ घेरा कि

मैं उसकी चिकित्सा कराते-कराते सम्पूर्ण संचित धन-सम्पत्तिसे हाथ धो बैठा, मकान भी दूसरोंके हाथमें चला गया। परंतु बीमारी कम न हुई। निराश हो एक दिन मैं पुत्रके पास बैठकर आँसू बहाने लगा। पुत्र हँसा और बोला—'क्या अब आपके पास कुछ भी नहीं रहा है? तो मैं इस संसारमें कल नहीं रहूँगा।' मैंने प्यारसे पूछा—'बेटा! ऐसा क्यों''''तथा यह नवयुवती वधू मेरे सामने विधवा होकर रहेगी तो मैं कैसे सहन''''।' कहते-कहते मेरा गला रुँध आया। लड़केने कहा—'मैं वही पंजाबी हूँ जिसका कत्ल आपकी बहिनके हाथ हुआ था तथा मेरी यह पत्नी आपकी वही बहिन है। अब मैं इस [illegible] इसका लोक तथा परलोक बिगाड़कर मुख मोड़ता हूँ। मैंने अपनी सम्पत्ति इलाजके रूपमें खर्च कराके वसूल पायी और आप पहलेकी भाँति निर्धन हो गये।'

मुझे उसकी बातोंपर आनेवाले कल ही विश्वास आ गया, जब कि मेरा बेटा मुझे तथा पत्नीको संसारमें दीन तथा निःसहाय बनाकर संसारसे चल बसा। मुझे प्रेरणा मिली। अतः मैंने गृह त्यागकर ईश्वरकी शरण ली और अब भगवद्भजनमें समय बिता रहा हूँ। अब मेरी अवस्था ९५ वर्षकी हो गयी है। यही है मेरे साथ-पंजाबीका प्रतिशोध तथा मेरे साधु होनेका कारण।'

यह साधु श्रीशर्माजीको दिसम्बर ५७ में मिला था। काफी आग्रह करनेपर भी साधुने नाम-पता अज्ञात ही रक्खा। अब ज्ञात नहीं वह साधु जीवित है अथवा नहीं। —ओमप्रकाश चौहान

छोटी-सी लड़कीकी समयसूचकता

मेरे मित्रके पिताजी एक बार कलकत्तेसे बंबई आनेके लिये हवड़ा मेलमें सवार हुए। उस समय जो घटना हुई, उसे उन्हींके शब्दोंमें यहाँ लिख रहा हूँ—

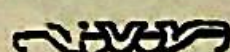
मैं कलकत्तेसे बंबई जाते समय हवड़ा मेलमें सवार हुआ। सारी गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी। ठीक समयपर गाड़ी खुल गयी। बरसातका मौसिम था। बहुत वर्षा हो रही थी। पर गाड़ी इसकी चिन्ता किये बिना ही दौड़ी चली जा रही थी।

अचानक इंजिन-ड्राइवरकी दृष्टि दूर हवामें हिलती हुई लालटेनपर पड़ी। उसे कुछ जोखिमकी निशानी प्रतीत हुई। गाड़ी धीमी हुई, स्टेशन नहीं था, पर गाड़ी खड़ी हो गयी। यात्रियोंने बाहर मुँह निकाले। इंजिनवाले तथा बहुत-से यात्री उतरकर दूर, जहाँ लालटेन दीख रही थी, जा पहुँचे। देखा तो एक दस वर्षकी लड़की हाथमें लालटेन लिये खड़ी थी।

लोगोंने पूछा—'बेटी! क्या बात है गाड़ी क्यों रुकवायी?' उसने कहा—'देखो, आगे वह पुल टूट गया है। मेरे पिताको इस समय बुखार आनेसे वे सिग्नल नहीं दे सके, इससे उनके बदले मैंने आकर लालटेन दिखाकर गाड़ी रुकवायी।'

इस बातको सुनकर सभीने लड़कीकी बहादुरी तथा कर्तव्यपालनके लिये उसे शाबाशी दी। तदनन्तर फर्स्टक्लासमें बैठे हुए एक डाक्टरने जाकर उसके पिताके इलाजकी व्यवस्था की और गाड़ी वापस कलकत्ते लौटी। 'अखण्ड आनन्द'

—नलिन. सी. बैंकर



'गजेन्द्र-स्तवन'से संकट-मुक्ति

आजसे कई माह पूर्व एक दिन मुझे मालवीयजी महाराजके द्वारा प्रशंसित लेख' गीताप्रेस, गोरखपुर-मुद्रणालयसे मुद्रित गजेन्द्र-स्तवनका मिला । जिसमें महान् संकटसे त्राण पानेकी प्रशंसा की गयी थी । मैंने भी लिखे मुताबिक उसे अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लिया, इसलिये कि विपत्ति-कालमें इसकी शक्ति देखूँगा। । प्रभुकी इच्छासे थोड़े दिनों पूर्व मैं संकटमें फँस ही तो गया । तब इस महान् अस्त्रका चार बजे रात और निरन्तर हृदयसे उच्चारण करके प्रयोग किया । मुझे संकटसे छुटकारा मिलनेकी आशा नहीं थी; परंतु आखिरकार मैं इस स्तवनके प्रतापसे संकटसे मुक्त होकर प्रसन्न हूँ ।

—रामायण पाण्डेय

दाद-खाजकी अनुभूत दवा

[illegible]

मूल[illegible] पा[illegible]म पीसकर आगपर खूब गरम कर लेना चाहिये। तत्प[illegible] उसे उस स्थानपर, जहाँ दाद-खाज हो, खूब गरम-गरम लगा देना चाहिये। पहले दिन तो मूलीका बीज खूब लगेगा और मरीजको थोड़ा कष्ट भी होगा; किंतु याद रखना चाहिये कि दवा जितनी जोरोंसे लगेगी उतना ही अधिक फायदा होगा। दूसरे दिन भी यही प्रयोग करना चाहिये। दूसरे दिन पहले दिनकी अपेक्षा कम तकलीफ होगी और इसी प्रकार तीन-चार दिनोंके प्रयोगसे दाद-खाज, चाहे जैसा भी पुराना हो जड़से आराम हो जायगा। यह मेरी अनुभूत दवा है। आशा है 'कल्याण'के पाठक एवं पाठिकाएँ इससे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगी।

—जयकान्त झा, प्रधान लिपिक, हरिश्चन्द्र कालेज, वाराणसी

भला ऊँटवाला

कुछ पुरानी बात है। राजस्थानमें उस समय ऊँट चलते थे। कलकत्ते, बम्बईसे आने-जानेवाले लोगोंको पचासों कोस ऊँटोंपर यात्रा करके रेल पकड़नी पड़ती थी। एक भाई कलकत्तेसे लौटे और उन्होंने नावाँ (कुचामन रोड) में एक अपरिचित ठाकुरका ऊँट भाड़े किया। बीमारीके कारण अचानक विचार हो गया, इससे जल्दीमें आना पड़ा था, इसलिये अपने घरको समाचार लिखकर परिचित व्यक्तिका ऊँट वे नहीं मँगा सके थे। दो लड़कियोंके विवाहके लिये कपड़ा-लत्ता, गहना तथा नगद सात [illegible]र—कुल [illegible] हजारका सामान साथ था। सामान ऊँटके बोरेमें रखे [illegible]। उसपर वे भाई सवार हुए। उन्हें तीन दिन सफर करके घर पहुँचना था। पहली पंद्रह कोसकी मंजिल तो ठीक निभ गयी। वे लोसलमें आकर ठहरे। वहाँसे दूसरे दिन चले। गरमीकी मौसिम थी, इसलिये रातको ऊँटकी यात्रा की जाती थी। दैवकी लीला। रास्तेमें उनके पेटमें भयानक दर्द उठा, समीप एक छोटे-से गाँवमें पेड़के नीचे ऊँट ठहराया गया। वे भाई उतरे। वहाँ रातको कहाँ कोई वैद्य मिलता। उनके पास लौंग थी, ऊँटवालेने आगका प्रबन्ध करके लौंगका काढ़ा बनाकर दिया। परंतु दर्द बढ़ता ही गया और इसी दर्दमें दो-तीन घंटे बाद वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। गाँववाले बड़े अच्छे लोग थे। सबने सहायता की। वहाँसे एक ऊँट लेकर गाँवका आदमी साथ चला और उनके सामानवाले ऊँटपर उनकी लाश बाँधी गयी।

ऊँटवालेसे गाँवके एक आदमीने कहा—'कुछ माल-ताल पास हो तो लेकर चम्पत क्यों नहीं हो जाता। लाश फूँककर घर चला जा।' उसने कहा—'भाई! ऐसी बात मनमें लाना भी पाप है। इन्होंने मुझपर विश्वास करके अपना हजारोंका मालमता तथा अपनी जान मेरे भरोसे छोड़ दी। ये तो मर ही गये। अब इनके सामानको लूटकर मैं इनके घरवालोंको भी मार दूँ। भगवान् सब देखते हैं। वे मेरे इस पापको कैसे सहन करेंगे। मुझे भी बड़ा दुःख है, तुमने ऐसी पापकी बात मुझसे कही ही कैसे, तुम्हारे मनमें यह पाप-भावना पैदा ही क्यों हुई और मैं इसे सुन भी कैसे सका? मालूम होता है मेरे मनमें भी कि जरूर कोई पाप छिपा है, तभी तुम मेरे सामने ऐसी पापकी बात कह सके और तभी मैं सुन सका।'

गाँववालोंने यह सुनकर ऊँटवालेकी बड़ी सराहना की और उस आदमीको धिक्कारा। लाश उनके घर पहुँची। घरवालोंके दुःखका पार नहीं रहा, पर जब कीमती सामान तथा नगद रुपयोंकी थैलियोंको ज्यों-का-त्यों पाया, तब उनके शोकमें भी एक हर्षकी लहर उठी। उन्होंने ऊँटवालेके प्रति बड़ी ही कृतज्ञता प्रकट की, उसे इनाम देना चाहा। पर उसने भाड़ेके सिवा एक पैसा भी अधिक नहीं लिया और कहा कि मेरे साथ यह जो गाँवका एक भाई आया है, इसको भले ही कुछ दे दिया जाय। पर उसने भी लेनेसे इन्कार किया। पड़ोसीके यहाँ रोटी-राबड़ीकी व्यवस्था की गयी। उसीको खाकर दोनों विदा हो गये। धन्य!

—चेतराम शर्मा

पढ़ाईकी लगन

एक दिन सबेरे साढ़े दस बजे अंदाज मैं बम्बईके सेंट जेवियर्स कालेजके पाससे जा रहा था। कालेजके बाहर दरवाजेके पास दो नौजवान विद्यार्थी बात कर रहे थे। उनमेंसे एकने मेरी ओर देखा और हँसता हुआ मेरे पास आकर मुझसे बोला—'नमस्ते भाई! पहचानते हो या भूल ही गये?'

मैंने उसको अच्छी तरह देखा और मेरी स्मृति पूरे पाँच वर्ष पीछे पहुँच गयी। मैं बोल उठा—'अरे, १९५५ में हरद्वारमें हमलोग साथ थे, वह चन्द्रकान्त तो नहीं हो?'

'हाँ, वही! हरद्वारमें अपने अ[illegible]ल ही ठहरे थे, फिर वहाँसे साथ ही देहरादून तथा मंसूरी गये थे' [illegible]ने उत्[illegible]।

मुझे याद आ गया—उस समय वह वि[illegible]द्रकान्त आज जवान हो गया है। उस समय तो यह हाई स्कूलके अन्तिम वर्षमें पढ़ रहा था।

फिर तो चन्द्रकान्त मुझसे बहुत-सी बातें कह गया। मेरे कुटुम्बके लोग हरद्वारमें मेरे साथ थे, उन सबके कुशल-समाचार पूछे और अपने कुटुम्बके समाचार बताये। फिर अचानक अपनी घड़ीकी ओर देखकर बोला—'दादा! क्षमा करना, मैं जरा इकोनोमिक्सका पेपर लिख आऊँ। तुमसे फिर मिलूँगा' इतना कहकर वह हँसता हुआ कालेजकी ओर चला।

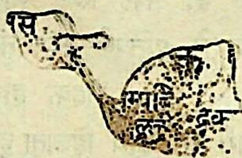
'जरा पेपर लिख आऊँ' इस 'जरा' शब्दपर जोर देकर मैं उससे पूछ बैठा।

'हाँ, मेरी फाइनल बी० ए० की परीक्षा चल रही है। मैं यहाँ

पेपर देने ही आया हूँ।' "तो क्या तुम्हें परीक्षाकी चिन्ता नहीं है ? दूसरे विद्यार्थियोंकी भाँति तुम अन्तिम घड़ीतक अध्ययन नहीं करते ? क्या 'नर्वस' नहीं हो जाते ? या फिर पास ही नहीं होना है, जो कहते हो जरा पेपर लिख आऊँ।" मैं एक ही सपाटेमें इतने प्रश्न पूछ गया।

'नहीं दादा ! मैं परीक्षाकी चिन्ता नहीं करता। वर्षके आरम्भमें ही मैं ध्यानपूर्वक अध्ययनमें लग जाता हूँ। परीक्षाके समय तो खूब आरामसे सोता हूँ और आनन्दमें रहता हूँ और हँसी-खेलमें ही पेपर लिख आता हूँ। इतनेपर भी तुम्हारे-जैसे बड़ोंकी द[illegible] प्रतिवर्ष [illegible] नंबरोंसे ही पास होता आ रहा हूँ।' इतना कह[illegible]हक हास्य बिखेरता हुआ, 'फिर मिलना' कहकर मेरी ओर हाथ हिलाता हुआ वह कालेजकी ओर दौड़ गया।

'जरा पेपर लिख आऊँ'—ये शब्द मेरे दिमागमें रम गये। हमारा अधिकांश विद्यार्थिसमूह तो पूरा वर्ष भटकता हुआ मौज-शौक और उल्टी-सीधी प्रवृत्तियोंमें ही बिता देता है। फिर परीक्षाके समय रातों जागकर स्वास्थ्य बिगाड़ता है और परीक्षाके दिन तो 'नर्वस' हो जाता है, 'टीप्स' के लिये इधर-उधर दौड़-धूप करता है। अन्तकी पाँच मिनटतक भी हाथसे पुस्तक नहीं उतारता और इतनेपर भी अच्छा परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता। हमारे ऐसे विद्यार्थी चन्द्रकान्तके उदाहरणसे शिक्षा लेकर शुरूसे ही अभ्यासमें नियमितरूपसे लग जायँ और हँसी-खेलमें धीरेसे कहें कि 'जरा पेपर लिख आऊँ' तो कैसा अच्छा हो। 'अखण्ड आनन्द' —गोपालदास



श्रद्धा-विश्वासका फल

बात १९५५ की है। तब मैं कोटामें रहता था, हमारे पड़ोसमें ही एक कृष्णा नामकी विधवा स्त्री रहा करती थी। आँखें मुँदी-मुँदी, श्वेत वस्त्र धारण किये वह साध्वी एकदम ज्योतिर्मयी साधना-सी ही प्रतीत होती थी। वह मुझे भगतजी कहा करती थी। न जाने क्यों, मुझ-जैसे अधमके लिये ऐसा सम्बोधन ! पर खैर, एक बार उसका एकलौता बेटा बीमार पड़ा, सख्त बीमार। घरमें उसकी माँ, वह और उसका पुत्र तीन ही थे। माँको कार्यवश किसी विवाहमें

जाना था। अतएव वह उसे दवा देकर यह कहकर चली गयी कि हर दो घंटेसे दे देना। मैंने कहा—'घरपर मैं रह जाऊँगा' पर कृष्णाने कहा—'नहीं, आप कष्ट न करें, जब आवश्यकता होगी मैं आवाज दे लूँगी।' मैं घर आ गया, माँ चली गयी। प्रमोद बुखारसे जल रहा था, वह कुछ देर तो बैठी रही, फिर एकाएक उठकर प्रभुके सिंहासनके पास गयी और सिंहासन लेकर छतपर आ गयी और चरणोंमें लिपट गयी तथा आर्त-कण्ठसे पुकार करने लगी। वहीं उसे नींद आ गयी। प्रातः ६ बजे मैं उनके घर गया। उसी स[illegible]सकी माँ आ गयी, पर कृष्णा दिखायी न दी। [illegible] तो वह सोयी थी। उसकी माँने जगाया, पूछा—'[illegible] थी न प्रमोदको ?' 'नहीं माँ !' माँने डाँटा—'एक तो बेटा है और तू नेह नहीं रखती, हे भगवन् ! जाने वह जिन्दा भी है या नहीं।' उसने उसे बहुत कुछ बुरा-भला कहा। उसने कहा—'माँ ! रखनेवाला तो वह है, मेरे जतन करनेसे क्या होता है' और वह दौड़ पड़ी अपने पुत्रके पास। हम सब गये तो प्रमोद सो रहा था और बुखार नाममात्रको भी नहीं थी। भगवान्‌ने बुखार चुरा ली थी। वह दौड़कर ठाकुरके पास गयी और चरणोंसे लिपट गयी। सारा सिंहासन आँसुओंसे तर हो गया। तबसे बाद जबतक मैं वहाँ रहा, मैंने देखा उसका सिर भी नहीं दुखा और अब तो उस प्रमोदका विवाह भी हो गया है।

'कुन्दन'

सच्ची सा



गत १९५७ अप्रैलकी बात है। संत ने साथ चार अन्य भक्तजनोंको और मुझको लेकर चारों धाम यात्राके लिये गये थे। श्रीजगन्नाथजीके दर्शनोपरान्त हम कलकत्तासे हरद्वारका सीधा टिकट लेकर हवड़ा स्टेशनसे देहरादून एक्सप्रेसमें हरद्वार-हवड़ाके डिब्बेमें जाकर बैठे। गाड़ी चल गड़ी। डिब्बा पूरा भरा हुआ था, सभी लंबी सफरवाले मुसाफिर थे। यद्यपि डिब्बा १७ आदमियोंके लिये था पर उसमें सब ५४-५५ यात्री थे। ऊपरकी सीटें भी सामानसे भरपूर थीं। नजदीक उतरनेवाला कोई न था।

जब मुरादाबाद स्टेशन आया, तब वहाँसे दो यात्री तरुण दम्पति सुविधाजनक डिब्बा ढूँढ़ते हुए हमारे डिब्बेके पास आये, त्यों ही गाड़ीने छूटनेकी सीटी दी। उन्होंने उकताये हुए हमारे डिब्बेकी खिड़कीमें शीघ्रतासे बिस्तरा ढकेला और स्त्रीको उठा उसी

खिड़कीसे डिब्बेमें उतारा। नीचे लोग बैठे थे। बिस्तरा और स्त्री उनके ऊपर जा पड़े। वे स्वयं भी खिड़कीसे घुसकर चढ़ गये; गाड़ी चल पड़ी। हमलोगोंने उनसे कुछ भी नहीं कहा; क्योंकि हमें तीर्थयात्राके नियमोंका पालन करना आवश्यक था। यात्रामें क्रोधादि नहीं करना चाहिये। अतः हमारी मण्डली धर्मव्यवस्थित थी। बड़ी भीड़ थी। कहीं भी जगह नहीं थी, बिस्तर ऊपर पड़नेसे लोगोंने उनसे बिस्तरा हटानेके लिये कहा। नवयुवकने उसे उठा लिया। नवयुवक थक चुके थे। संत श्री········ने उनकी स्त्रीको अपनी जगह बैठनेको दी। वे स्वयं ज्यों ही खड़े हुए कि नव[illegible] बिस्तरा [illegible]के सिरपर रख दिया। मैंने उनको ऐसा न क[illegible] कहा; इसका परिणाम विपरीत हुआ। नवयुवकने [illegible] की। अब बिस्तरपर अपना और सामान भी संतजीके सिरपर रख दिया। लोगोंने हटाया। नवयुवकको समझानेकी चेष्टा की, पर विवाद बढ़ता रहा। गाड़ी कुछ घंटोंमें हरद्वार जा पहुँची। सभी उतरे। शान्त-मूर्ति संत श्री········प्लेटफार्मपर उतरे। सभीने अपना-अपना सामान सँभाला। नवयुवक सपत्नीक नीचे खड़े थे। संतजीने पूछा—'कहो भाई! कुछ सेवा है?' वे दम्पति चिन्तित थे; क्योंकि उन्होंने गाड़ीमें हड़बड़ाहटमें टिकटें कहीं गिरा दी थीं। पता नहीं था कहाँ गिरीं। हमारा डिब्बा हरद्वारतकका ही था, अतः वह कटकर इंजनद्वारा खींचा जा रहा था।

नवयुवकने कहा—'महाराज! टिकट खो गया।' संतजीने कहा—'भाई! अच्छी तरह तलाश करो।' नवयुवकने कहा—'तुमने

ही टिकट ली हैं, दे दो, नहीं तो पुलिसके हवाले करूँगा ?' संतजीने कहा—'भले ही; परंतु आपको याद है कि टिकटें कहाँतक थीं और कब-कहाँ खोयीं ?' लोग सुन रहे थे। किसीने कहा डिब्बेमें तो गिरीं नहीं ? मुझसे रहा न गया, मैंने कहा—'भले आदमी! संतजीने तुम्हें जगह दी, बिस्तर उठाया, भला-बुरा सुना और परिणाममें यह अपराध लगा रहे हो ?'

हमारी बातचीत हो रही थी, इसी बीच संतजी उक्त डिब्बेकी तलाशमें गैरेजकी ओर गये जहाँ डिब्बा काटकर छोड़ा गया था। उस डिब्बेमें दो-तीन आदमी बैठे थे जो रेलवे कर्मचारी थे, जो इंजनके साथ डिब्बे जोड़ने-छोड़नेका [illegible] करते हैं। [illegible]से संतजीने पूछा, उन्होंने तलाश की। ढूँढ़नेपर टि[illegible]यीं, संतजी उनको ले आये।

मैं उन नवयुवकसे कह रहा था 'भाई! किसी सज्जन व्यक्तिपर यों लाञ्छन लगाना उचित नहीं है।' काफी लोग इकट्ठे हुए थे, संतजीने लाकर टिकटें दीं और डिब्बेमें गिरनेकी बात बतायी, फिर कहा—'और कुछ सेवा हो तो कहें! हमें श्रीबद्रीनारायण जाना है। २-३ दिन हरद्वारमें रहेंगे। हमारा पता—'श्रीसुदर्शन आश्रम, स्टेशनरोड, हरिद्वार है।' वे रिक्शामें बैठे, चले गये और हम सुदर्शन-आश्रममें जाकर टिके।

दूसरे दिन बैशाखी स्नान बड़े समारोहसे हो रहा था। रास्तों, घाटों और स्नानस्थलोंपर पुलिसकी व्यवस्था थी। आने-जानेके लिये अलग-अलग रास्ते नियत थे। हम आश्रमसे सुबह ९ बजे स्नानार्थ

हरकी पैड़ी जा रहे थे, तो आगे रास्तेमें ऋषिकेश क्रॉस रोडपर वही नवयुवक अकेले ही मिले । संतजीने पूछा—'कहो महाशयजी, कुशलपूर्वक हो न ?' नवयुवकने कहा—'क्या बताऊँ, एक आपत्ति हो तो कहूँ—नृसिंहभवनमें ठहरनेके लिये कोठरी नहीं मिली, वहीं बाहर ही पड़े हैं । स्त्रीको रातसे गुर्दा-दर्द (आन्त्रिक वृक्कशूल) हो गया है । बड़ी बेचैनी है । मैं थैला ले स्नानको हर पैड़ीपर गया था, वहाँ थैला ही कोई उठा ले गया । उसीमें पैसे थे । बड़ा परेशान हूँ ।'

संतजीने कहा—'तो [illegible] सेवा करूँ ?' नवयुवकने दस रुपयेकी या[illegible] । संत[illegible] झट निकालकर दे दिये और मुझको आदेश दि[illegible] इनके साथ जायँ, स्त्रीकी योग्य चिकित्सा करें ।' मैं[illegible]ानुसार उन नवयुवकको साथ लेकर सुदर्शन-आश्रमसे अपनी दवाकी पेटी ली और फिर नृसिंहभवनमें उनकी स्त्रीको अच्छी तरहसे देखा । उन्हें इंजेक्शन दिया और गोलियाँ देकर मैं हरकी पैड़ी अपनी मण्डलीसे आ मिला । श्रीगङ्गाजीका स्नानकर नित्यनियममें प्रवृत्त हो, पूजापाठसे निपटकर १ बजे वापस लौटे । रास्तेमें ही नृसिंहभवन पड़ता है । अतः उनसे मिले, उनकी पत्नीके दस्त-पेशाब खुल गया था । वह स्वस्थ-सी दिखायी देती थी । हमें देखकर दोनों नत-मस्तक मिले और अपने पूर्वकृत बुरे बर्तावके लिये अनुनय-विनय करने लगे । वे करुणभावमें सराबोर थे । संतजीने कहा—'भाईजी ! हमें भगवान्‌ने आपकी तुच्छ सेवाका सौभाग्य दिया, यद्यपि हम इस लायक नहीं थे । आप कुछ दुःख न मानें ।

मनुष्यको जीना है तो मनुष्य ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्रकी सेवाके लिये जीना है, न कि अजागलस्तनकी भाँति व्यर्थ जीवन बिताना है।' 'आप क्या कार्य करते हैं ?' संतजीने पूछा। तब उन्होंने कहा—'मैं राज्य-तहसील-कर्मचारी हूँ। बी० ए० हूँ और यह भी पढ़ी-लिखी है।' 'बहुत अच्छा' संतजीने कहा—'और कुछ सेवा बताइये ?' नवयुवकने कहा—'प्रभु ! हमारी सुबुद्धिके लिये कुछ नियम बतावें ताकि हमारे जीवनका कल्याण हो। मैं आपका कृतज्ञ हूँ।'

संतजी—'लीजिये, यह गीता और रामायणका गुटका। आप दोनों सुशिक्षित हैं, अतः इन्हें ध्या[illegible]र्वक पढ़ें और मनन करें। संत-समागम किया करें। गीताप्रेसका [illegible]र्मिक [illegible] पुस्तकें पढ़ा करें। इससे आपका कल्याण होगा। भग[illegible] सद्बुद्धि दें।' नवयुवक—'संतजी ! आपसे मैं गङ्गायात्राके [illegible] मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब कभी ऐसी उद्दण्डता नहीं करूँगा और आपके आदेशोंका प्राणपणसे पालन करूँगा।'

बादमें हम अपने स्थानपर लौट आये। वे सुखी होकर अपने गन्तव्य स्थानपर चले गये।

संतश्री····की इस सच्ची साधुता, नम्रता, सहिष्णुता और सर्वहित-बुद्धिका मुझे आज दिनतक स्मरण है। वास्तवमें हमें सबके साथ सहानुभूतिपूर्ण सद्व्यवहार करना चाहिये। स्वार्थके वशीभूत होकर अमानुषी व्यवहार कभी नहीं करना चाहिये।

(डाक्टर एस० आर० डी०)

भाईका स्नेह

रामविलासजी तथा हरमुखरायजी दोनों भाई थे। घर सम्पन्न था। किसी कारणवश दो[illegible] अलग हो जाना अच्छा समझा। बँटवारा [illegible] दो[illegible] भाई अलग-अलग कारोबार करने लगे। आपसमें [illegible]न-देन भी चलता ही था। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम था। [illegible] लड़के बड़े हो गये और व्यापारका काम करने लगे। पर भाग्यकी बात—रामविलासका व्यापार उन्नत होता गया और हरमुखरायका गिरता गया। लगभग सत्तर हजारसे कुछ अधिक रुपये रामविलासकी फर्मके हरमुखरायकी फर्मके नाम पड़ते थे। हरमुखरायका फर्म फेल हो गया। रामविलासको बहुत दुःख हुआ, परंतु सारा कारोबार लड़कोंके हाथमें था। अतः वे कुछ कर नहीं सके। जमीन-जायदाद दोनोंके पास अभी थी। रामविलास बहुत बूढ़े हो गये थे। उनके मनमें एक दिन यह विचार आया कि 'हमारी फर्मके बहुत बड़ी संख्यामें रुपये भाई हरमुखरायमें पावने हैं। हरमुखराय भी मरणासन्न हैं और मैं भी मरणासन्न हूँ। हरमुख-रायके लड़के गरीबी हालतमें हैं। रुपये यदि उनके नाम पड़े रहे

और मेरे लड़कोंने हरमुखरायके लड़कोंको तंग किया या उनकी जमीन-जायदादपर मन चलाया—यद्यपि लड़के ऐसे अभी हैं नहीं—तो बहुत बुरी बात होगी।'

यह सोचकर वे अपने मनमें दृढ़ निश्चय करके एक दिन गद्दीपर पहुँचे। उनके अपने नाममें लगभग इतने ही रुपये फर्ममें जमा थे, जो मरनेपर उनके लड़कोंकी ही सम्पत्ति होते। उन्होंने जाकर मुनीमसे बही माँगी और भाई हरमुखरायके खातेके सारे रुपये ब्याज-समेत जमा करके अपने खातेमें नाम लिख दिये और हरमुखरायका खाता चुकता कर दिया। हरमुखरायको इसकी सूचना भी नहीं दी।

हरमुखरायको इस बातका पता भी नहीं [illegible] बड़े ईमानदार थे। अपनी जमीन-जायदाद बेच-बेचकर वे [illegible] चुका रहे थे। बड़े भाईके ऋणको भी वे एक बड़ी [illegible] तथा मकान बेचकर चुकानेकी व्यवस्था कर रहे थे। इसी बीच उन्हें पता लगा कि बड़े भाई साहबने मेरा खाता अपने रुपये देकर चुकता कर दिया है तो उनके नेत्रोंसे स्नेहके आँसू झरने लगे। वे भाईके चरणोंमें आये और बोले—'आपने ऐसा क्यों किया? मैं तो रुपये दे ही रहा था।' बड़े भाई रामविलासके नेत्र भी झरने लगे, उन्होंने भाईको गले लगा लिया। दोनों रोने लगे। यह दृश्य देखकर रामविलासजीके भले लड़कोंका हृदय भी द्रवित हो गया। फिरसे दोनों फर्म एक कर लिये और आनन्दका स्रोत बह उठा।

—गोविन्दराम

भगवद्दर्शन*

(क)

त्रिभुवननाथ सड़कपर खड़ा 'हाय ! हाय !' कर रहा था। उसकी दशा अत्यधिक दीन थी। बूढ़ा, कम्पायमान, दृष्टिहीन, डगमग-डगमग पाँव, रक्तहीन, बहुत फटे-पुराने वस्त्र।

'हाय, कपड़ा ! हाय, कपड़ा !'

मगर [illegible]को क्या [illegible] फ़िक्र

उस[illegible]आहट थी। मैंने अपना दफ्तरका काम बंद कर दिया [illegible]ने पास बुलवाया, उसे बहुत ही सत्कार, प्रेम, आत्मीयताके सा[illegible] कुर्सीपर बैठाया। उसके नेत्रोंका जल रुक गया।

मैंने उससे मिष्ट भाषण किया।

एक 'दुअन्नी' मात्र मैंने 'उसको' दी। अहा ! न तो 'उसकी' गद्गदताकी ही कुछ सीमा रही और न 'उसके' आशीर्वादोंकी बौछार-की। उसीको नमस्कार।

(ख)

वह मेरे जीवनका सबसे खास दिन था। उस दिन 'उसने' मुझे निहाल कर दिया !

---

* एक आदरणीय 'बन्धु' के सम्पादकके नाम आये हुए पत्र।
—सम्पादक

कुष्ठसे गलित वह बंद कोठरीमें पड़ा था। टट्टी-पेशाब सब वहीं। दुर्गन्ध अपार थी, मगर मैं उसे सुगन्ध मानता हूँ। 'उस' ने मुझे स्वयं आवाज देकर बुलाया—'मुझे जल ला दोगे ?'

मैं सन्न रह गया! 'यह त्रिलोकीनाथ अखिलेश्वर है! मेरी परीक्षा ले रहा है।'—मैंने अपनेसे कहा।

वह बहुत ही कराह रहा था, जिस चारपाईपर वह पड़ा था, उससे अधिक खराब चारपाई संसारमें न होगी।

मैंने सद्भावपूर्वक सावधानीसे उसकी आज्ञाका पालन किया। कुल एक लोटा जल बाहर नलसे भर[illegible] दिया[illegible] टूटा-फूटा लोटा बहुत ही दयनीय दशामें था। उस[illegible] बहुत उपकृत हुआ। बहुत आशीर्वाद देता रह गया!

(ग)

कल 'वह' चोरी करते पकड़ा गया और वह भी एक लड्डूकी! लड्डू कैसा—आटे और गुड़का।

'वह' बहुत शर्माया और पानी-पानी हो गया।

हमलोगोंने कुछ भी बुरा न माना! द्वापरमें 'वह' माखनचोर था अब लड्डू चुराता है, तो नयी बात क्या हुई ?

यह 'उस'की रिपोर्ट है। ××× हमें आप यह समझाइयेगा कि ऐसी दशामें हम 'उसे' आपका प्रणाम कैसे निवेदन किया करें।

(ध)

परसों मैंने 'उस'का पक्ष लिया और विपक्षियोंके प्रति कड़े शब्दोंका प्रयोग किया।

'वह' बुरी तरह हाँफ रहा था और उसपर मार पड़ रही थी। उसे ऊपर चढ़नेके लिये बाध्य किया जा रहा था। 'वह' लाचार था; क्योंकि जिस गाड़ीमें 'वह' जुता था, उसपर गन्नेका वे-तोल बोझ लदा था। हाय! उस समय 'वह' एक मूक बेबस भैंसेके रूपमें था।

मैंने क्रोधका प्रयोग किया। "यदि 'इस'के जिह्वा होती तो 'यह' तुम[illegible]वाणीका प्रयोग करता; यह तुमपर अदालतमें दावा क[illegible] तुम्हें सजा भोगनी पड़ती। तुम अन्यायपर तुले हो! [illegible]को तिलाञ्जलि दे दी है। भगवान्का खौफ करो।" —मैंने 'उसे' पीटनेवालोंको चेतावनी दी। वे लोग शर्माये और हँसे भी। उन्होंने अपनी गलती मान ली और 'उसे' पीटना बंद कर दिया। वह अब स्वयं ही जोर लगाकर ऊपर चढ़ रहा था। 'वह' मुझे आशीर्वाद देता हुआ प्रतीत होता था। 'उस'को नमस्कार! उसीकी जय।

मैंने उन लोगोंसे फिर कहा—'ज्यादा बोझ मत लादा करो। रहम किया करो, जरा शर्म किया करो।' उन लोगोंने स्वीकार किया।

फिज़ूलखर्चीका परिणाम

कुछ समय पहले मैं नागपुर गया था। वहाँ मैं एक गुजराती लॉजमें ठहरा। इस लॉजमें बम्बईकी एक कम्पनीमें सेल्समैनके पदपर काम करनेवाले एक भाई ठहरे हुए थे। बम्बईके सेल्समैन श्रीधीरूभाईने जो अपने अनुभवकी बात बतायी, वह बहुत उपयोगी जान पड़ती है।

'पिताजी बचपनमें ही स्वर्गवासी हो गये थे। इससे घरकी सारी जिम्मेवारी मुझपर आ पड़ी थी। उस समय मेरी उम्र सत्रह वर्षकी थी। मेरे मामाका घरका कारखाना था, इससे मुझे नौकरी देनेके लिये मैंने उनसे कहा; परंतु उन्होंने [illegible]टी उम्र है' —कहकर मुझे नहीं रक्खा। फिर बम्ब[illegible] सेल्समैनके पदपर नियुक्त हुआ। इसलिये मुझे हरेक बड़े श[illegible]ना पड़ता। अपने एक दूसरे भाई भी बम्बईकी एक प्रसिद्ध कम्पनीमें नौकरी करते थे। उन्हें मासिक ५५०) (पाँच सौ पचास) रुपये वेतन मिलता था, इसके अतिरिक्त उन्हें प्रतिदिन १८) (अठारह) रुपये भत्ता मिलता था। एक बार मैं कम्पनीके कामसे दिल्ली गया था। वहाँ वे भाई भी आये हुए थे।। मैं तो दैनिक १) (एक) रुपया किरायेके कमरेमें ठहरा था परंतु उन्होंने पाँच रुपये रोजके भाड़ेका कमरा ले रक्खा था। दोनों गुजराती होनेके कारण हमलोगोंमें बड़ा मेलजोल हो गया। परंतु उनको जब मैं पैसे उड़ाते देखता, तब मुझे बड़ा ही दुःख होता। दिल्लीमें उन्होंने मुझसे कहा—'चलो, होटलमें नाश्ता कर आयें।' मैं कपड़े पहनकर तैयार

हो गया, तब उन भाईने मुझसे कहा—'इस तरहके कपड़े पहननेवालोंको होटलमें घुसने नहीं दिया जाता । उस होटलमें जानेके लिये अच्छी-से-अच्छी पोशाक चाहिये ।'

मैंने कहा—'इससे अच्छे कपड़े मेरे पास नहीं हैं ।' तब उन्होंने मुझे अपने अच्छे कपड़े पहनाये और नेकटाई गलेमें बाँधी । हम दोनों 'अपटूडेट्' होकर होटलमें पहुँचे । मैंने अपने जीवनमें कभी न देखी हुई व्यवस्था वहाँ देखी । वहाँ हमलोगोंने आइसक्रीम, चाय आदि खाने-पीनेके साथ ही नाश्ता भी किया । एकाध घंटा वहाँ बीता । फिर होटलका बिल आया । हाथमें लेकर मैंने देखा साढ़े सत्रह [illegible] बिल था । मैंने तुरंत ही बिल उन भाईको दे दिया । मे[illegible] शायद इतने पैसे भी नहीं थे । उन भाईने बिलके सा[illegible]रे [illegible] डेढ़ रुपया नौकरको इनाम दिया । इस प्रकार उन्होंने उन्नीस रुपये चुकाये । तदनन्तर हमलोग अपने कमरोंमें वापस आ गये ।

इस बातको छः-सात महीने बीते होंगे । मैं घूमता-घामता कलकत्ते पहुँचा और वहाँ 'गुजराती समाज'के मकानमें गया । वहाँ मैंने उन भाईको देखा । पर यह क्या ? क्या ये वे ही भाई हैं, जो मुझे दिल्लीमें मिले थे ? मनमें शङ्का हुई । आँखोंने बार-बार सावधानीसे देखकर निश्चय किया कि 'हैं तो वे ही' । अन्तर इतना था कि आज न तो उस दिन-सरीखे कपड़े थे, न सिरमें तेल ही था । आँखोंमें उस दिनकी मादकताके स्थानपर दरिद्रता भरी थी । गोरे मुखपर श्यामता छा रही थी । मैंने पूछा—'क्यों भाई ! यों निस्तेज-से कैसे

हो रहे हैं ? प्रथम श्रेणीके लॉजमें फर्स्टक्लास किरायेके कमरेमें उतरनेवाले आप यहाँ कैसे पड़े हुए हैं ?'

उन्होंने धीरेसे कहा—'भाई ! वह नौकरी छूट गयी ! अब मैं बेकार हूँ । कहीं भी काम नहीं मिलता ।'

मैंने कहा—'आप इस समय दुखी हैं, इसलिये मेरा आपसे कुछ कहना उचित तो नहीं है; तो भी मैं कहता हूँ कि उस नौकरीके समय आपकी आमदनी एक हजार रुपये मासिक थी । उस समय आपने आधे रुपये बचाये होते तो भी आज आप २५०००) (पचीस हजार) रुपयेकी बचत कर सकते और उन रुपयोंसे आज चाहे जैसा रोजगार कर सकते । इस बेहाल परिस्थितिसे बच जाते ।'

उन्होंने कहा—'अब तो जो होना था हो चुका । इस समय तो आप मुझे पचास रुपये उधार दीजिये ।'

मेरे पास केवल पैंतीस रुपये थे और मुझे पटने जाना था । इसलिये मैं उनको उनमेंसे केवल पाँच रुपये दे सका और वहाँसे चल पड़ा । एकाध महीनेके बाद मुझे समाचार मिला कि उन भाईने जगत्से ऊबकर आत्महत्या कर ली ।

उन भाईकी यह बात सुनकर मेरे मनमें आया कि 'समाजका अधिकांश आज भोगविलासकी अँधेरी गुफासे बाहर निकलनेके बदले अधिक-से-अधिक नीचे गहराईमें उतरता जा रहा है ।'

—जयन्तीलाल लवजी भाई पुजारा

देवीकी कृपा

सन् १९४२ के जूनकी बात हैं। उस वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा काशीका तापमान अधिक था। प्रातःकाल ८ बजेसे ही 'लू' अपना प्रभाव दिखाने लग जाती थी। काशी-निवासी 'लू' की गरम हवाके झोंकोंसे परेशान थे। बहुत-से लोग तो लूके कारण मृत्युके शिकार भी बन चुके थे। उस भयंकर गरमीके समय मेरे ज्येष्ठ पुत्र नरेशको, जो उस समय दो वर्षका था, बुखार आने लगा। बुखारके कारण अब [illegible] ड़चिड़ा-सा रहने लगा। उसके स्वाभाविक मनोहारी 'हँ[illegible]नको 'रुदन' ने ले लिया था। उसके लिये माता या मेरे [illegible] भी पीना मुश्किल हो गया था। उसका शरीर दिनानुदिन जर्जरीभूत होने लगा। बालककी नन्ही सी अवस्था और उसके तरुण क्लेशको देखकर मेरा चित्त डाँवाडोल और अशान्त रहने लगा।

मैं खिन्नमनस्क होकर काशीके सुप्रसिद्ध डाक्टर सत्येन्द्रनाथ मुकर्जीके पास रुग्ण बालकको लेकर गया। डाक्टर साहबने बालकको देखकर दवाकी व्यवस्था कर दी। कई दिनोंतक इलाज चलता रहा, परंतु लाभके बदले उत्तरोत्तर रोग बढ़ता ही गया। बालक अत्यधिक कमजोर होता जा रहा था। इसी समय बालकके दाहिने हाथमें एक फोड़ा भी हो गया। ज्वरकी वेदनासे तो बालक त्रस्त था ही, अब रही-सही कमीकी पूर्ति फोड़ेने कर दी। अब

बालक अधिक विचलित हो गया। बालककी स्थिति देखकर मेरी बुद्धि बेकाम हो गयी थी। मेरे मस्तिष्कमें बार-बार विभिन्न प्रकारके विचारोंके तूफ़ान उठते थे और वे कुछ देर बाद स्वतः विलीन हो जाते थे। उस समय मुझे अपने शरीरतककी सुध न थी। मुझे किसीसे बोलना-चालना भी एक प्रकारका बोझ प्रतीत होता था, किसी भी काममें चित्त नहीं लगता था। खाना-पीनातक अव्यवस्थित हो गया था। निद्रा-देवी तो मानो उस समय मुझसे रूठकर कुछ दिनोंके लिये कहीं अन्यत्र चली गयी थीं।

एक दिन बालकको अकस्मात् रह-रहकर दस्त आने लगे। अधिक दस्त होनेके कारण बालककी अवस्था वि[illegible] चिन्तनीय हो गयी। यहाँतक कि वह अपनी मातातकको [illegible] असमर्थ हो गया और उसके श्वास आदिकी प्रक्रियाएँ भी अ[illegible]में परिवर्तित हो गयीं। ऐसी स्थिति देखकर परिवारके सभी सदस्य घबरा गये। मैं 'मियाँकी दौड़ मस्जिदतक' के अनुसार पुनः डाक्टर मुकर्जीके यहाँ उन्हें बुलानेके लिये गया। डाक्टर साहब उस समय अपने रोगियोंसे घिरे होनेके कारण विशेष व्यस्त और व्यग्र थे। मुझे उस समय एक-एक क्षण पहाड़-सा प्रतीत हो रहा था। मैं होश-हवासमें न था। यह नहीं पता था कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, क्यों खड़ा हूँ और किससे बात कर रहा हूँ। किसी प्रकार अपने-आपको सँभालकर मैंने डाक्टर साहबसे बालककी चिन्तनीय स्थिति सुनायी और तत्क्षण उन्हें अपने घर चलनेके लिये कहा। डाक्टर साहब तुरंत मेरे साथ घर आ गये। बालकको देखकर उन्होंने कहा—"आप

घबरायें नहीं, बच्चेको 'टायफाइड' है, शीघ्र ही ठीक हो जायगा।' डाक्टर साहबके ऐसा कहनेसे मुझे कुछ संतोष मिला। मैं बड़े धैर्य और विश्वासके साथ मनोयोगपूर्वक डाक्टर साहबकी दवा कर रहा था। परंतु दुर्भाग्यवश बालकको कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं हो रहा था। बालककी नाजुक स्थिति देखकर घरके सभी सदस्योंकी राय हुई कि अब किसी दूसरे डाक्टरका इलाज किया जाय। किंतु मैं घरवालोंके इस विचारसे विरुद्ध था। मेरी इस सम्बन्धमें सदासे यह धारणा रही है कि रोगीकी चिकित्सा अच्छे-से-अच्छे एक ही डाक्टरकी की जाय। हाँ, बीच-बीचमें अन्य डाक्टरोंका परामर्श भी ले लिया जाय। मैंने अपनी विचारधाराके अनुसार मुख्य चिकित्सक डा० मुकर्जीको ही रक्खा, किंतु [illegible] विमर्शके लिये अन्य कई डाक्टरोंको भी बुलाया। सभी डाक्टरोंने [illegible] मुकर्जीकी दी जानेवाली दवाकी ही पुष्टि की। तदनुसार डा० [illegible]र्जीकी दवा निरन्तर चालू रही। परंतु बालककी हालत उत्तरोत्तर बिगड़ती ही जा रही थी। अब सब लोगोंको विश्वास हो गया कि 'यह बालक अब चंद घंटोंका ही मेहमान है।' बालकके विषयमें सभी लोगोंकी यह धारणा देख मेरा रहा-सहा धैर्य टूटता जा रहा था। बालककी माताकी स्थिति तो अवर्णनीय थी। वह तो लगभग दो सप्ताहसे खाना-पीना और निद्रातकको भूल चुकी थी। मैं दवासे निराश हो गया। उसे बंद कर केवल भगवान्‌की शरण ली। भगवत्कृपासे अकस्मात् मुझे 'अपनी कुलदेवी'*का स्मरण

---

* देवीकी स्थापना तथा मन्दिर किसने कब बनवाया, इसका यथार्थ पता नहीं है। इनके सम्बन्धमें दो किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं। कुछ लोगोंका

हो आसा, जिनकी मान्यतासे हमारे परिवारका सर्वदासे कल्याण होता चला आ रहा है। इनका प्राचीन भव्य मन्दिर जि० रोहतक (पूर्वी पंजाब) के सुप्रसिद्ध कस्बा 'वेरी' में है। वहाँ देवी अपने भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली मानी जाती हैं। इन देवीका विशाल मेला चैत्र और आश्विन—इन दोनों नवरात्रोंमें लगता है, जिनमें बम्बई, कलकत्ता आदि सुदूर स्थानोंसे बड़े-बड़े सेठ-साहूकार भी अधिक संख्यामें उपस्थित होते हैं।

इन्हीं देवीके धाममें जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करके उनके समक्ष हमारे परिवारके सभी बालकोंके 'मुण्डन-संस्कार' करानेकी प्रथा हमारे वंशमें सदासे चली आ रही है। इधर कुछ समयसे हमलोगोंके यहाँ अपनी 'कुलदेवी' के ... बालकोंका 'मुण्डन-संस्कार' करना बंद हो गया था। मैंने ... श्रद्धा-भक्तिसे अपनी 'कुलदेवी'की शरण ली और मनौती मानी कि "मैं अपने बालकके अच्छा होनेपर अवश्य ही सपत्नीक बालकको आपके धाममें ले जाकर यथासमय इसका 'मुण्डन-संस्कार' करा दूँगा।" साथ ही मैंने दूसरी मनौती प्रत्यक्ष-सिद्धिदात्री श्रीविन्ध्यवासिनी देवीकी, जो

कहना है कि इन देवीकी स्थापना महर्षि दुर्वासाने की थी और कुछ लोगोंका कथन है कि इन देवीकी स्थापना पाण्डव-कुलभूषण भीमने की थी, इसीलिये इनका नाम 'भीमादेवी' पड़ा—

'भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।' (दुर्गासप्तशती ११।५२)

इन देवीके सम्बन्धमें 'कल्याण' के विशेषाङ्क 'शक्ति-अङ्क' (पृष्ठ ६८४) में भी लिखा गया है।

जि० मिर्जापुर (उ० प्र०) में हैं, मानी कि 'बालकके अच्छा होनेपर बालकके सहित सपत्नीक आपके दर्शन करूँगा ।'

इस प्रकार उपर्युक्त सद्यः सिद्धिको देनेवाली दोनों देवियों (मूर्तियों) की मनौती माननेके कुछ ही देर बाद एकाएक मैंने अपने बालकमें अद्भुत परिवर्तन देखा । वह अब कुछ-कुछ चैतन्यावस्थामें हो आया । शनै-शनैः अपनी माताको पहचानने लगा तथा उसका दुग्ध-पान भी करने लगा । ज्वर कम हो गया और उसका फोड़ा भी फूट गया । अब वह विशेष प्रफुल्लित दीख पड़ा । बालकमें आश्चर्यजनक लाभको देखकर मेरे हर्षका ठिकाना न रहा । मैं अपनी 'कुलदेवी' और 'श्रीविन्ध्यवासिनी देवी' की अपूर्व चमत्कारपूर्ण दैवी शक्ति [illegible] हो गया और मेरा उसी दिनसे इन दोनों देवियोंपर [illegible] हो गयी ।

अब केवल बालककी कमजोरी शेष रह गयी थी । दोनों देवियोंके नामोच्चारणपूर्वक प्रसादरूपमें दिया हुआ जल एवं दुग्ध अब बालकके लिये अमृतरूपमें काम करने लगा, जिससे बालक चन्द्रकलाकी तरह दिनोंदिन स्वस्थताकी ओर प्रवृत्त हो गया, इस प्रकार कुछ ही दिनोंमें वह पूर्ण स्वस्थ हो गया । इस अद्भुत प्रत्यक्ष दैवी शक्तिको देखकर मेरा सर्वदाके लिये दृढ़ विश्वास हो गया है कि —'जो मनुष्य श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक देवी-देवताओंकी शरण स्वीकार करते हैं, वे अवश्य ही समस्त प्रकारके संकटोंसे मुक्त होकर आनन्दरूपी समुद्रमें गोते लगाते हैं ।'

—वेणीराम शर्मा गौड, वेदाचार्य

दयालु भाभी

प्रयागके गत कुम्भमेलेकी बात है—हमलोग जहाँ ठहरे थे, वहाँ उसके बगलमें ही एक सज्जन ठहरे थे। उनके साथ उनका दूर सम्पर्कका एक चचेरा भाई तथा एक नौकर था। दो-चार दिन बाद ही उनकी धर्मपत्नी कलकत्तेसे घर जाती हुई कुम्भ-स्नानके लिये पतिके पास आकर ठहर गयी। उसके साथ उसका एक छोटा बच्चा था। वह घर जा रही थी, इससे उसके ट्रंकमें लगभग दस हजारका गहना था, जो एक पीतलके डिब्बेमें था और वह डिब्बा ट्रंकमें रक्खा था। ये बातें मुझको पीछे माॡम हुईं। घटना ऐसी हुई कि तीन-चार दिनके बाद ही वह गहनेका डिब्बा चोरी हो गया। ट्रंकका ताला ज्यों-का-त्यों था। किसीने दूसरी चाबी लगाकर ट्रंकसे गहनेका डिब्बा निकाल लिया था। नौकरसे पूछा गया, आसपास खोज हुई; पर कहीं पता नहीं चला। बेचारे दम्पति सिर पीटकर रह गये। कुछ दिनों बाद गहने बेचते हुए कानपुरमें एक आदमी देखा गया। उसपर संदेह हुआ। उससे कुछ भले लोगोंने पूछा, पकड़ानेकी धमकी दी। उसने बतलाया कि मैंने तो यह गहना प्रयागमें एक सज्जनसे दो हजारमें खरीदा था। खोज की गयी तो पता लगा कि वह चचेरा भाई ही चोर था। भाईको बहुत

गुस्सा आया। उसने पुलिसमें रिपोर्ट करके चचेरे भाईको पकड़वाना चाहा। पर उनकी पत्नीने रोक दिया और चचेरे भाईको बुलाकर पूछनेके लिये कहा। उसे बुलाया गया। वह आकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसने नम्रतासे स्वीकार किया कि 'चोरी मैंने की है। लड़कीके विवाहमें दस हजार रुपये लगे थे, उसमेंके साढ़े चार हजार रुपये अभी देने थे। एकका बड़ा तकाजा था, उसके यहाँ दूसरी लड़कीका कुछ जेवर बंधक रक्खा था। रुपयेवालेका तकाजा था तथा लड़कीके ससुरालवाले लड़कीको लेने आ गये थे, उसका गहना देना आवश्यक था, इसलिये मैंने गहना चुरा लिया। गहना कितना था—मैंने देखा ही नहीं। मुझे तो रुपयेकी आवश्यकता थी, अतः मैंने उसी दिन दो हजारमें उसे बेचकर रुपये महाजनको भेज दिये। अब आप जैसा उचित समझें करें।'

यह सब सुनकर दयामयी उसकी भाभीका हृदय पिघल गया। उसने पतिको समझा-बुझाकर राजी किया। दो हजारमें गहना खरीदनेवालेको बुलाया गया। वह भला आदमी था तथा पुलिससे पकड़े जानेसे डर भी रहा था। उसने दो हजार रुपये तथा उनका उचित ब्याज लेकर गहना लौटा दिया। उन सज्जनने पत्नीके कहनेके अनुसार ढाई हजार रुपये और भी चुकाकर चचेरे भाईको ऋण-मुक्त करा दिया और उसे अपनी फर्ममें अच्छे वेतनपर नियुक्त भी कर लिया। उसने रोम-रोमसे आशीर्वाद दिया। धन्य।

—हरसुखदास गुप्त



आदर्श मित्र

पुनीत वाराणसीवासी 'दूजो हरिचन्द' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, खड्गविलास-प्रेसके संस्थापक, रेपुरानिवासी बाबू श्रीरामदीनसिंहजीके परम मित्र थे । भारतेन्दुजी बड़े उदार थे । उनका सदा ही मुक्तहस्त रहता था । इसमें उनकी सारी सम्पत्ति समाप्त हो गयी; बल्कि डेढ़ लाख रुपयोंका ऋण एक सज्जनका रह गया, जिसकी चर्चा उन्होंने अपने भाई-भतीजों या दौहित्रसे भी नहीं की थी ।

एक दिन उन्होंने अपने अभिन्न मित्र बाबू रामदीनसिंहको बुलाकर उनसे और सारी बातें बतायीं और कहा कि 'जिनके रुपये हैं, वे सज्जन कभी मुझसे माँगने नहीं आये । इस कारण मुझे इस ऋणके न चुकानेका और भी बड़ा दुःख है ।'

भारतेन्दुके फक्कड़ स्वभावसे परिचित, बाबूसाहबने तुरंत कहा—'अच्छा, तो यह ऋण चुकाना मेरे जिम्मे रहा । आप इसकी तनिक भी चिन्ता न करें । इस ओरसे बिल्कुल निश्चिन्त रहकर भगवत्स्मरण करें ।'

बाबू रामदीनसिंहकी डेढ़ लाख रुपयेका ऋण चुका देनेकी बात सुनकर लाखोंकी सम्पत्ति लुटा देनेवाले भारतेन्दुके नेत्र अश्रुपूर्ण हो [illegible]सी दशामें उन्होंने कागजका एक टुकड़ा बाबू रामदीनसिंहके [illegible]में दिया, जिसपर लिखा था—

'मेरी सारी पुस्तकों (१७५) के प्रकाशनका सर्वाधिकार खड्गविलास प्रेसको ही है ।'

बाबू रामदीनसिंहने उसे पढ़ा और तुरंत फाड़कर उन्हींके सामने फेंक दिया और कहा—'यह तो मित्रता निभाना नहीं हुआ, व्यापार हुआ ।'

ये दोनों आदर्श मित्र धन्य थे ।

('पद्मभूषण' आचार्य श्रीशिवपूजनसहायके कथनके आधारपर)

मनके अमीर चपरासी

जिन दिनों १९४७ ई०से १९५० तक—मैं शिक्षाविभागमें सहायक उपनिरीक्षकके पदपर बलिया जिलेमें ही काम करता था, कुछ हिंदू चपरासियोंके बाद मुझे एक [illegible] चपरासी श्रीअब्दुल रहमान मिले, जो ठाट-बाटमें मुझसे भाँ बढ़कर रहते थे। उन्हें देखकर अपरिचित अध्यापक भ्रममें पड़ जाते थे। मुसल्मान सब डिप्टी इन्सपेक्टरोंसे उनकी पटरी नहीं बैठती थी, पर न जाने क्यों मेरा जूतातक उठाकर सुरक्षित स्थानमें रख देनेमें उन्हें संकोच नहीं था। लड़कोंद्वारा साबुन लगानेमें भूल होनेपर वे मेरे कपड़े भी स्वयं साफ कर देते थे। मैं स्वयं तथा मेरे कुछ साथी उन्हें पहले बड़ा घमंडी समझते थे; परंतु सम्पर्कमें आनेपर हमलोगोंके विचार बदल गये। वे अविवाहित थे। गोलमेज-सम्मेलनके समय किसी अंगरेज अधिकारीके साथ लन्दन भी हो आये थे।

निरीक्षण-कालके दौरेमें नदी पार करनेपर मल्लाहको पैसे अवश्य देते थे, ठीकेदारको भले ही न दें। अनेक वार ऐसा देखनेपर मैंने इसका कारण पूछा—तो कहा, 'मल्लाह गरीब आदमी है, ठीकेदार मालदार है।' मेरी विस्मृतिका रुपया भी उनके पाससे पूरा लौटता था।

बलिया स्टेशनपर सम्पन्न घरानेका एक लड़का मजिस्ट्रेटी चेकिंगमें पकड़ लिया गया। उन दिनोंके मजिस्ट्रेट छात्रोंपर १०१) अर्थ-दण्ड करते थे। लड़केके रोने-गिड़गिड़ानेका कुछ भी प्रभाव उनपर नहीं पड़ा। हुक्म हुआ 'तुरंत रुपया दो या जेल जाओ'। स्टेशनपर सैकड़ोंकी भीड़ थी। लड़का छुटकारा पाते ही तुरंत रुपये मँगा देनेकी बात कहता था, पर किसीके कानपर जूँ न रेंगी। हमारे चपरासीने साहबसे कहा, 'साहब! हमसे रुपये ले लीजिये और लड़केको छोड़ दीजिये।' साहबने कहा—'तुम इसे पहचानते हो?' चपरासीका उत्तर था—'नहीं'! इसपर साहबने कहा—'तो क्यों रुपये चुकाते हो? वापस नहीं मिलेंगे।' श्रीरहमानका उत्तर था, 'कोई चिन्ता नहीं।' रुपये देकर ज्यों ही लड़का छुड़ाया गया, त्यों ही घरवाले आ गये। रहमानको रुपये मिल गये, परंतु सब लोग उस गरीब, परंतु मनके अमीर चपरासीकी मानवताको देखकर दंग रह गये। अब्दुल रहमान, अब भी बलिया-शिक्षा-विभागमें चपरासी-पदकी मर्यादा बढ़ा रहे हैं।'

—अध्यापक शिवप्रसादसिंह

सुन्दर अन्त

प्रायः लोग संशय किया करते हैं कि 'मरनेके समय कर्मानुसार पार्षद, धर्मराजके दूत या यमदूत प्राणीको लेने आते हैं या नहीं और अजामिलकी कथाको पौराणिक गल्प बता द[illegible] नीचे लिखे मेरे प्रत्यक्ष अनुभवसे मुझे तो पूर्ण विश्वास हो गया है कि अवश्य कर्मानुसार दूत आते हैं।

सं० २००१ के मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीकी रातकी घटना लिखता हूँ। महाराज बुद्धसिंहजी बीमार थे। उन्हें Cardial Asthma यानी हृदयरोगसे दमा और बुखार था। शुरू कार्तिकमें वे बीमार हुए थे; परंतु किशनगढ़में डाक्टर-हकीमोंके इलाजसे कोई फायदा नहीं हुआ। मुझे समाचार मिलनेपर मैं किशनगढ़ गया और उन्हें डा० हैलिग (जर्मन हृदय-विशेषज्ञ) का इलाज कराने जयपुर ले आया। डाक्टरने देखकर कहा कि 'मेरा इलाज आज ही शुरू कर दो तो आठ दिनोंमें काफी ठीक हो जायँगे।' परंतु

भावी प्रबल है । उनके घरवालोंको यह जँची कि वैद्यका ही इलाज कराया जाय । मैंने भी सोचा कि 'भावी तो टलेगी नहीं, जिस समय जो होना है, होगा ही, उसे एक सेकेंड भी कोई टाल नहीं सकता ।' जयपुरके एक प्रसिद्ध वैद्यका इलाज चला । बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । तीन दिन बाद फिर डाक्टर हैल्गिको बुलाया तो उसने कह दिया कि अब इलाज नहीं हो सकता । वैद्यजीकी चिकित्सा चलती रही । मार्गशीर्ष शुक्ला ५ को वैद्यने भी जवाब दे दिया और डाक्टरने भी कहा कि आजकी रात नहीं निकलेगी । रात होनेपर उनके बड़े लड़के मा० सरदारसिंहजीको, जो साथ थे, मैंने सो जानेको कह दिया और मैं उनके पास बैठ गया । श्वासकी गति बहुत मंद हो गयी थी और वे अचेत-अवस्थाकी तरह सो रहे थे । रातके [illegible] बजे करीब कुछ बचपनकी बातें याद आनेसे तन्द्रामें ही [illegible]के साथी बालकोंके नाम लेकर, जैसे बचपनमें किया करते होंगे, खेल-कूदकी बातें करने लगे । मैंने यह समझकर कि इनके प्रयाणका समय आ रहा है और 'अन्त मता सो मता' उन्हें जगाया । चेतनावस्थामें आनेपर मैंने उनसे कहा—'महाराज साहब ! इस समय और सब ध्यान हटाओ, 'श्रीनाथजी' 'श्रीनाथजी' कहो ।'' उनके इष्टदेव या कुलदेव श्रीनाथजी थे, जैसा कि किशनगढ़ राजघरानेमें हैं । उन्होंने आँखें खोलकर मुझे देखा और 'श्रीजी-श्रीजी' पाँच-चार दफा बोलकर रह गये । मैं पलँगके पास बाँयी ओर बैठा उन्हें देखता रहा । अन्तिम श्वास थे । किसी भी समय हिचकी आने या प्राण जानेके लक्षणोंकी

सम्भावना देख रहा था । चार बजे सुबह उन्होंने फिर आँख खोली और सिर घुमाकर बाँयीं ओर दाहिने तरफ देखा और बोले 'थे कुण हो, थे कुण हो। पीताम्बर पहर्याँ हो, तिलक लगायाँ हो। ब्राह्मण हो ? मनै लेवा आया हो ? चालू हूँ भाई, चालू हूँ ।' (आप कौन हैं, आप कौन हैं ? पीताम्बर पहने हैं, तिलक लगाये हैं । ब्राह्मण हैं ? मुझे लेने आये हैं ? चलता हूँ भाई, चलता हूँ ।) इतना कहकर हमेशाके लिये आँखें बंद कर लीं । मेरे उनके बड़ा प्रेम था । अतः उनकी मृत्युसे दुःख भी हुआ, परंतु यह सद्गति देखकर चित्तको सान्त्वना भी मिली । इस घटनासे मुझे यह विश्वास हो गया कि 'अन्त मता सो मता' और प्राणान्तके समय पार्षद, धर्मराजके दूत या यमदूत अपनी करनीके अनुसार अवश्य आते हैं । तथा यह करनी एक दिन एक मही[illegible], सारी आयु महाराज बुद्धसिंहजीकी तरह सरल चित्तसे उनका होकर रहे तभी सिद्ध होती है । नहीं तो, अन्त समयमें भगवान्का नाम मुँहसे निकलना कहाँ रक्खा है ।

'जनम-जनम मुनि जतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ।' उन्हें अन्त समयमें न डर लगा, न वे घबराये, न चिल्लाये, न चीखे । शान्तिसे सोते रहे और जैसे गङ्गाकी लहर शान्तिसे आकर विलीन होती है, यह जीवन समाप्त किया । बोलो श्रीराधा-सर्वेश्वरकी जय !

—जैतसिंह (खंडेलाके)

स्नेहपूर्ण व्यवहार

एक दिन मैं हरगाँवसे ट्रेनद्वारा सीतापुर जा रहा था । दोपहरके लगभग साढ़े बारह बजेका समय था । वर्षा ऋतु थी । जिस समय ट्रेन स्टेशनपर आयी, वर्षा हो रही थी । जिस डिब्बेमें मैं चढ़ा था, उसमें कुछ सम्भ्रान्त घरानेकी लड़कियाँ बैठी थीं ।

जैसे ही ट्रेन चली, उसी डिब्बेमें एक ग्रामीण स्त्री भागते-भागते चढ़ी । उसकी गोदमें एक छोटा वालक था, जो वर्षासे बिल्कुल भींग गया था । उसकी कमीज भीगी होनेके कारण उस स्त्रीने निकाल डाली थी । बालक ठंडसे काँप रहा था और जोर-जोरसे रो रहा था । ग्रामीण स्त्री उसे चुपानेका प्रयत्न करने लगी और उसने उसको अपनी धोतीमें लपेटना चाहा; परंतु उसकी धोती भी सारी भींगी थी । अतः वालकको आराम न मिला । इतनेमें ही उन सम्भ्रान्त घरानेकी लड़कियोंमेंसे एकने अपने बक्समेंसे एक कुछ पुरानी धोती निकाली और उसमेंसे एक बड़ा टुकड़ा फाड़कर उस स्त्रीको दे दिया । पर वह स्त्री संकोचवश कपड़ेमें वालकको लपेटनेमें झिझकी । मैंने तथा अन्य यात्रियोंने उसे कपड़ा लपेटनेको कहा, इतनेमें उस लड़कीसे न रहा गया और वह स्वयं वालकके पास गयी और उसको गोदमें लेकर, कपड़ेसे पोंछकर उसमें लपेट दिया । बालकने आराम पाकर रोना वंद कर दिया ।

वैसे वात बहुत छोटी, परंतु मेरा हृदय उस उच्च कुलकी लड़कीके उस ग्रामीण बालकके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहारसे द्रवित हो गया !

—मदनमोहन सक्सेना

आदर्श ईमानदारी

जामडोबा कोलियरीसे एक मीलकी दूरीपर डूमरी नं० ४ कोलियरीके एक सज्जन श्रीअनूपसिंह नामक निवास करते हैं। वे अच्छे व्यापारी हैं। उनके यहाँ डूमरी नं० ७ के रहनेवाले श्रीजगनारायण उपाध्यायने चौदह हजार रुपये धरोहरके रूपमें रख दिये थे। इस बातका पता उन दो व्यक्तियोंके अतिरिक्त और किसीको भी नहीं था। भावीवश श्रीजगनारायणजी उपाध्यायकी अकस्मात् मृत्यु हो गयी। तदनन्तर श्रीअनूपसिंहजीने उनके घरवालोंको बुलाकर चौदह हजार रुपये उनको दे दिये। वे सभी दंग रह गये!

—पं० रामप्रताप मिश्र

दरिद्रकी सेवा

घटना अलीगढ़की है। सत्य कथा है, कपोलकल्पित नहीं। एक विद्वान् पण्डितजीने मुझे बतलाया कि एक संध्याको वे अलीगढ़की नगरीमें एक पानकी दूकानपर खड़े थे। एक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण उनके पास आया। पण्डितजीके सामने हाथ फैलाकर उस ब्राह्मणने कहा—

'चार पैसेका गुड़ दिला दीजिये।'

पण्डितजीको बुरा लगा। उन्हें विक्रमादित्य तथा कालिदासकी कथा याद आ गयी। विक्रमके दरबारमें नर-बलि करनेवाला एक राक्षस आया। उसने नर-बलिकी अनुमति चाही। भला ऐसी आज्ञा कैसे मिल सकती थी? उस राक्षसने कहा कि 'या तो अनुमति दो या मेरे प्रश्नका उत्तर दो—

नष्टस्य कान्या गतिः?

जो नष्ट हो गया है उसकी और क्या गति होगी?'

इस टेढ़े प्रश्नका उत्तर देनेके लिये विक्रमने सात दिनका समय माँगा। यह भार कालिदासपर सौंपा गया। सातवें दिन प्रातः-काल संध्यावन्दनके समय कालिदास एक भिखारीके वेषमें उस कर्म-काण्डी राक्षसके यहाँ पहुँचे और भिक्षा माँगी। राक्षसने पूजन-पाठके समय एक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मणको भिक्षा माँगते देखकर उसे फटकारकर कहा—

'तुम्हें लज्जा नहीं आती कि इतने हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण होकर प्रातःपूजनके समय भीख माँग रहे हो?'

उस ब्राह्मणने कहा—

'महाराज ! मैं जुआ खेलता हूँ !'

'ब्राह्मण और जूआ, धिक्कार है तुमको ।'

'जुआ खेलते-खेलते मैं मदिरापान करने लगा ।'

'हे भगवान् ! तुम्हारा इतना पतन !'

'मदिरा पीनेसे वासनावृत्ति जागी । अतएव मैं वेश्यावृत्ति करने लगा हूँ ।'

'उफ, तुम्हारे पतनकी सीमा नहीं है !'

'वेश्यावृत्तिके लिये धनकी आवश्यकता होती है । अतएव मैं चोरी करने लगा ।'

'तो फिर तुम ब्राह्मणत्व बिल्कुल खो बैठे ?'

'चोरी, वेश्यावृत्ति, मदिरा, जूआ—मैं दर-दरकी ठोकरें खाने लगा ।'

'तब तुम भिखारी बन गये छिः ।'

राक्षसने घृणापूर्वक कहा ।

तब भिखारी ब्राह्मण बोला—

'नष्टस्य कान्या गतिः ?'

राक्षसको उसके प्रश्नका उत्तर मिल गया । जिस ब्राह्मणका इतना पतन होगा, जो एक कुमार्गपर चलेगा उसे अनगिनत कुमार्गपर चलना पड़ेगा । वह नष्ट होकर रहेगा और उसकी अन्य गति क्या होगी । वह दर-दरकी ठोकरें खायेगा ।

हमारे विद्वान् पण्डितजीने सोचा कि ऐसी ही कोई बात इस ब्राह्मणके साथ भी होगी ।

उन्होंने उस ब्राह्मणसे कहा—

'भाई ! तुम हृष्टपुष्ट हो । कोई कारोबार करो । भीख माँगना बड़ा भारी पाप है ।'

भिखारीने पण्डितजीके नेत्रोंमें नेत्र गड़ाकर एक क्षणके लिये देखा । फिर दृढ़ स्वरसे बोला—'हो सके तो गुड़ दिला दीजिये । नहीं तो, स्पष्ट उत्तर दीजिये। मैं ऐसे उपदेश रोज सुनता हूँ ।'

पण्डितजीको उसकी बातोंसे ऐसा लगा कि वह अपढ़ नहीं है । उन्होंने फिर कहा—

'यदि स्वयं नहीं कमा सकते तो तुम्हारी संतान तुम्हारा पालन-पोषण क्यों नहीं करती ?'

भिखारीने सौम्य भावसे कहा—

'पत्नी, संतान सभी निकम्मे निकल गये । बोलो, गुड़ खिलाते हो या नहीं ?'

अब हमारे विद्वान् मित्र उसकी स्थिर मुद्रासे इतने प्रभावित हो चुके थे कि उन्होंने पैसे निकाले, गुड़ खरीदा । जबतक वह गुड़ खाकर पानी पीता रहा, वे उसकी ओर देखते रहे । पानी पीकर वह आश्वस्त हुआ । फिर उसने पण्डितजीसे कहा कि 'जरा दूर मेरे साथ चलिये ।' पासमें ही एक उद्यान था । वहाँ पहुँचकर वह भिखारी ब्राह्मण कुछ क्षण मौन रहा । फिर एकाएक उस आशुकवि पण्डित भिखारीने कहा—

विद्या सत्कविता तथा सुजनता सेवापि च प्रार्थना
पञ्चैताः परिणिन्यिरे जनयितुं वित्तात्मजं यत्नतः।
व्यापारं सकलं विहाय नितरां तत्रैव रेमे मुहुः
किं कुर्वे कुटिलाशयेन विधिना पञ्चापि वन्ध्याः कृताः॥

उस ब्राह्मणने कहा कि 'मैंने अपने जीवनमें पाँच विवाह किये। विद्यासे मैं पण्डित हो गया। कवितासे मैंने अच्छी कविता करना सीख लिया। सुजनतासे मैं बड़ा अच्छा जीवन, सदाचारी जीवन बिताने लगा। सेवासे मैंने नौकरी भी की। प्रार्थनासे मैंने चाटुकारिता तथा प्रार्थना भी काफी की। इन पाँचों स्त्रियोंके साथ मैंने सब काम छोड़कर दत्तचित्त हो रमण किया। पर अपने कुटिल भाग्यको क्या कहूँ कि ये पाँचों स्त्रियाँ वन्ध्या निकलीं। इनसे कोई संतान नहीं हुई जो मेरा पोषण करती। यानी सब कुछ करके देख लिया, मेरा भाग्य ही साथ नहीं देता। अतएव भीख माँगता फिरता हूँ।'

प्रयत्न या परिश्रमसे ही धनकी प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है। भाग्य बड़ी भारी वस्तु है। इसके एक ही झटकेसे सब करे-धरे-पर पानी फिर जाता है। मनुष्यके जीवनमें भाग्य बड़ी भारी वस्तु है। दरिद्रता दुर्भाग्यके कारण भी होती है। अतएव भाग्यके लिये भाग्यके स्वामी भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये।

किंतु, धन उसीके पास आता है जो दूसरेके दुर्भाग्यको समझता है, पहचानता है या जानता है। जिसके मनमें दूसरेके दुर्भाग्यके प्रति कोई सहानुभूति नहीं, उसका जीवन अन्ततोगत्वा भाग्यशाली नहीं रह सकता। हमारे भाग्यका विधाता दरिद्र है।

दूसरेकी दरिद्रता है। जो दरिद्र होता है, वह संसारको अधिक अच्छी तरहसे पहचानता है। वह संसारसे अधिक परिचित है। इसीलिये तो लिखा है—

भो दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन॥

'हे दारिद्र्यदेव ! तुमको नमस्कार। तुम्हारे प्रसादसे ही मैं सिद्ध हो गया हूँ। मैं दरिद्र हूँ, मेरी ओर कोई नहीं देखता है, पर मैं संसारभरकी ओर देख रहा हूँ।'

एक दरिद्रको जब संसारमें, जीवितोंकी बस्तीमें कहीं सहारा नहीं मिला, तब वह मरनेवालोंके स्थानपर गया। वह श्मशान जा पहुँचा ! वहाँ उसने देखा कि एक शव बड़े आरामसे लेटा है। विश्राम कर रहा है। उसकी यह शान्ति तथा सुख देखकर दरिद्रने उससे कहा—

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह गुरुं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिरं मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशानं शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः॥

"हे सखे ! जरा एक क्षणके लिये उठकर मेरी दरिद्रताका बोझ सँभाल लो। मैं इसे ढोते-ढोते थक गया हूँ और तुम आरामसे सो रहे हो।' श्मशानमें जब शवने दरिद्रकी यह बात सुनी तो उसने सोचा कि 'दरिद्रतासे कहीं अधिक अच्छा है मर जाना।' यह

सोचकर वह चुपचाप लेटा ही रहा। उसने दरिद्रकी प्रार्थनाका कोई उत्तर ही नहीं दिया।"

जब दरिद्रता इतनी बुरी चीज है तथा दरिद्रका साथी मुर्दा भी नहीं है, तब हम अपने सीमित साधनोंमें उसकी सहायता तो कर ही सकते हैं। भिखारी हमसे भीख नहीं माँगने आता। वह तो हमें सीख देने आता है कि 'दो, भाई! दो। दान दो। नहीं दोगे तो हमारे-जैसे हो जाओगे।'

भिक्षुका नैव याचन्ति शिक्षयन्ति गृहे गृहे।
देयं देयं पुनर्देयं न देयं फलमीदृशम्॥

इस संसारमें जो कुछ प्रकाश है वह धनी तथा समृद्धिकी ज्योतिसे नहीं, पीड़ित तथा परित्यक्तकी ज्योतिसे है। यदि अन्धकारसे प्रकाशमें आना है तो दरिद्रकी आत्माको पहचानना होगा।

क्या खबर सितम नवाज बे-खबर जहानको।
दिल जलोंकी आहसे हो रही है रोशनी॥

मृत्यु एक निश्चित सत्य है। अमीर हो या गरीब, मरना सभीको है। यदि मरना निश्चित है तो फिर धनकी गठरी भी क्या काम देगी। धन-संचय करनेवालेने यदि केवल उसका संचय किया और दूसरेकी सहायता नहीं की तो निश्चय ही मृत्युके समय उसके प्राण बड़े संकटमें रहेंगे।

पूछत पूत कपूत बाबू धन केतनों कहाँ।
प्रान परे साँकरे न हाँ करे न ना करे।

जीवनके उस पार धनका नहीं, निर्धन तथा परसेवापरायणका महत्त्व होता है। यही सद्गुरु हमें सिखाते हैं, अन्यथा उस पार क्या है, कौन जाने।

उतते कोउ न आइआ जासे पूछूँ धाय।
इतते सब कोइ जात है भार लदाय लदाय॥
उतते सतगुरु आइआ, जाकी बुधि है धीर।
भवसागरके जीवको खेइ लगावे तीर॥

बाबा कबीरकी यह वाणी याद रखनी चाहिये। हमें दूसरेकी या अपनी दरिद्रतापर दया नहीं, संकोच करना चाहिये। उसे कर्म तथा भाग्यका फेर, दोनों ही मानना होगा। भाग्य तथा कर्म सद्गुरुकी कृपा तथा उपदेशसे सुधरते हैं। पर, अपने सुधारके साथ दूसरेके सुधारकी बातें भी सोचनी चाहिये। मानव-जीवनकी पहेलीको यदि सही ढंगसे सुलझाना है तो अपने तथा परायेके भाग्यको समान रूपसे सँवारना होगा। केवल अपना-अपना करनेसे कुछ नहीं होता। जीवनमें साहसके साथ, श्रद्धाके साथ, विश्वासके साथ, भगवान्में आस्था रखकर जो व्यक्ति जीवन बिताता है, उसीका जीवन सफल होता है, अन्यथा वाल्मीकिरामायणके अनुसार—

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥

'जो पुरुष निरुत्साह, दीन और शोकाकुल रहते हैं, उनके सब काम बिगड़ जाते हैं और वे बहुत बड़ी विपत्तिमें पड़ जाते हैं।'

—श्रीपरिपूर्णानन्द वर्मा

लालचके बदले ईमानदारी

गत २३ जुलाईकी बात है, मैं और मेरे पिताजी श्रीरामचरित्र पाण्डेयजी छपरासे आ रहे थे। छपरामें हमलोग श्री एस्० यम्० राजा एक्सपोर्टके यहाँसे आ रहे थे। छपरामें भगवानबाजार स्टेशनपर चढ़े। वहाँसे हमलोगोंको मोतीहारी आना था। हम लोगोंके पास करीब छः सौ रुपये थे, जिसमें सौ मेरे पास और पाँच सौ पिताजीके पास थे। पिताजीने उन रुपयोंको अपनी ऊपरवाली जेबमें रख लिया था। ट्रेनमें अधिक भीड़ होनेके कारण पिताजी ऊपरके पाटियेपर, जिसपर सामान रक्खा जाता है, चढ़ गये और बिस्तरा बिछाकर सो गये। उनके चढ़नेके समय ही रुपये जेबसे निकलकर, नीचे एक बंगाली महिला बैठी थी, उसके पैरोंपर गिर पड़े थे। उस समय तो उस महिलाने कुछ भी नहीं कहा, किंतु जब गाड़ी मुजफ्फरपुरमें पहुँची और हमलोग अपने बिस्तरोंको सँभालकर चलने लगे, तब उस महिलाने पूछा कि 'आपका कुछ छूटा भी जा रहा है क्या ?' पिताजीने देखा तो उनको कुछ मालूम नहीं हुआ। उसने नोटोंका बंडल निकालकर दिया और नोट कैसे कब गिरे थे यह सुनाया। पिताजी बहुत प्रसन्न हुए और उन देवीका परिचय प्राप्तकर हमलोग प्रसन्नतासे अपने घर लौटे। उन देवीका नाम श्रीविमला कुमारी था। वे कलकत्तामें रहती हैं। उनकी सदाशयता और महानताके हमलोग सदा कृतज्ञ हैं।

—रामदर्शन पाण्डेय

आत्मसंजीवनी

दि० १९-३-६१ रविवारको प्रातः अपने ही विषहर जंगल डभौरा (रीवाँ) म. प्र. में चलते हुए कुटियासे लगभग सौ गज दूर पेड़के नीचे मुझे लकवा हो गया। एक घंटेभरमें धीरे-धीरे होशमें ही पाँवसे सिरतक सारा दक्षिणाङ्ग गतिहीन—शून्य हो गया। मैं घबराया नहीं, संसार मिट्टी और जीवन निःसार प्रतीत होने लगा, समझा कि देहत्याग होगा; क्योंकि लकवासे ग्रस्त होकर वैज्ञानिक इलाजसे लोगोंको बरबाद और मरते देखा था, अतः स्वयं अस्पष्ट लाचार वाणी बोलते और कलम पकड़नेसे लाचार होकर दूसरेसे माथाफोड़ करते हुए करीब पचास पत्र मित्रों, स्नेहियों और पत्रकारोंको लिखवा दिये। आधा अङ्ग बेकार जडवत् होनेसे मैं सालभरके बालकसे भी गया-बीता था।

लोग मुझे देखने आते, तेल मालिश दवाकी राय देते, डॉक्टर अस्पतालकी बात करते।

क्या डाक्टर, अस्पतालके लोग रोगी नहीं होते, नहीं मरते ? दुनियाँमें सचमुच रोगकी दवा होती तो लोग रोगी न होते और न मरते। दवा प्रायः अन्धविश्वास और अधिक रोगी बनानेके लिये धोखेका सौदा है।

मैं उसी पेड़के नीचे, खुली वायु और धूपमें पड़ा रहा, भोजन त्याग दिया, केवल गरम पानीके वाह्यान्तर प्रयोग करता रहा। रोगके आक्रमणकी क्रिया जडता तथा आत्मचिकित्सामें क्रमशः अङ्गोंमें स्पन्दनका अनुभव मैंने दिन-रात करते हुए देखा है कि शरीरमें आत्मा कैसे कार्य करता है। तुलसीदासजीने कहा है—

'कहियत भिन्न न भिन्न'

प्राचीन उपनिषत्कारोंने कहा है—

यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति।

जिससे सब ज्ञात हो सके वही विज्ञान है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

सूर्य स्थावर-जंगमका मूल है।

वह आत्मसंजीवनी मेरे जीवनमें स्वयंसिद्ध प्रमाणित हुई। मैं चार दिनमें स्पष्ट बोलते हुए, अब लिखता-पढ़ता बारह दिनमें चलने-फिरने लगा हूँ। कल ही एक फर्लांग चला था। रोग हमारा शत्रु नहीं, वरं हमारे विकारके रूपमें हमारा चिकित्सक मित्र है, तन-मनका शोधक है। इतना ज्ञान और आत्मसुधार लोग कर सकें तो संसारमें रोग न हो। परंतु वैज्ञानिकोंने आत्मशोध न करके परमाणु

और कीटाणुओंकी शोध करके वैज्ञानिक खेतीद्वारा संसारसे रोग-दुःख मिटानेके और उन्नतिके नामपर रोग बढ़ाये और विनाशकी स्थिति उत्पन्न कर दी। विज्ञानमें आत्मा नहीं, प्राण नहीं। वैज्ञानिक बतावें कि दो नथुनोंसे श्वास चलनेका रहस्य क्या है?

ओषधि कही जानेवाली वस्तुएँ जड़ और विषतुल्य हैं, उनमें जीवन नहीं। धोखेका सौदा है। लकवेसे अथवा अन्य रोगोंसे ग्रस्त लोगोंको वैज्ञानिकोंके आश्रयमें चिकित्सा कराते देख लोगोंको बरबाद होते मरते हुए मैंने देखा है। आत्मज्ञान—आत्मशोधके बिना विज्ञान फीका और नपुंसक है। जो लोग इतर चिकित्सा-पद्धतियोंको अवैज्ञानिक कहते हैं, प्रकृतिको शरीरका शत्रु कहते हैं, वे पहले अपनी वैज्ञानिकता सिद्ध करें। विज्ञानसे प्रकृति पैदा हुई या प्रकृतिमेंसे विज्ञान पैदा हुआ?

आज बारह दिनमें, किसी विकृत ज्ञानकी ओषधि बिना मैं लकवासे मुक्त हूँ, दूसरे लोग भी मुक्त हो सकते हैं। विज्ञानकी शरणमें गये हुए लोग बारह महीनेमें बहुत धन व्यय और लगातार अनेक विद्युत् और चमत्कारी प्रयोगसे अच्छे न होकर, बरबाद अपंग बने हुए हैं। ईसामसीहने कहा है—

Creator is He that is in you.
Than that which is in the world.
Nearer is He, than your hands and feet.

इसको सिद्ध करो, यही जीवन है।

—विश्वामित्र वर्मा

मंद करत सो करइ भलाई

लगभग चालीस सालकी बात है। रामतनु चाटुर्ज्ये हुगली जिलेके एक छोटे-से गाँवमें रहते थे। उनके पिता पुरोहितीका काम करते थे। पर उनकी इच्छा लड़केको पढ़ाकर उसे अच्छी नौकरीमें लगा देनेकी होनेसे उन्होंने रामतनुको इंट्रेंसकी परीक्षा पास करवाकर कलकत्ते भेज दिया और वहाँ एक सरकारी महकमेमें नौकर रखवा दिया। वे वहाँ पढ़ते भी रहे। धीरे-धीरे एफ० ए० कर लिया। उन्नति करते-करते दो सौ रुपये महीनेपर एक सरकारी स्कूलमें हेडमास्टरी करने लगे। उस जमानेमें दो सौ रुपये महीनेकी नौकरी बहुत बड़ी चीज थी। इससे रामतनु बाबूका गाँवमें गौरव बढ़ गया था। गाँवमें उनका एक पड़ोसी अधरचन्द्र था। वह रामतनुकी इस उन्नति तथा गौरवसे बहुत जलता था और समय-समयपर रामतनुकी बदनामी करने, उनपर लाञ्छन लगाने तथा नुकसान पहुँचानेकी चेष्टा किया करता था। रामतनु तथा उनकी स्त्री दोनोंके स्वभाव बहुत अच्छे थे। वे अभिमान

तो करते ही नहीं, किसीका बुरा करनेकी कल्पना तो उनके मनमें कभी आती ही नहीं, वे गाँवभरका सहज ही भला चाहते थे और यथासाध्य किया भी करते थे। इससे गाँवमें उनकी शोभा-कीर्ति और भी बढ़ गयी थी। यह भी अधरचन्द्रकी जलन बढ़ानेमें एक खास कारण था। रामतनुको उसकी इस मनोवृत्तिका कुछ भी पता नहीं था।

एक समय छुट्टियोंमें रामतनु गाँवपर आये हुए थे। अधरचन्द्रने दो-तीन गुंडोंको पहलेसे ही तैयार करके एक दुष्ट-योजना बना रक्खी थी। बाहरसे किसी एक आवारा स्त्रीको वहाँ बुला लिया था। स्कीम थी कि किसी दिन वह स्त्री व्यर्थ ही हो-हल्ला मचावे, रामतनुपर लाञ्छन लगावे और उसी समय वे गुंडे तथा अधरचन्द्र उस स्त्रीकी रक्षाके बहाने रामतनुपर टूट पड़ें। स्कीमके अनुसार ही काम हुआ। एक दिन रामतनु कहीं बाहरसे घर आ रहे थे। दुपहरका समय था। एक छोटी-सी सुनसान गली थी। निश्चित स्थानपर वह स्त्री खड़ी थी। रामतनु उसके पाससे निकले कि उसने बड़े जोरोंसे चिल्लाकर पुकारा—'छोड़ दे, छोड़ दे—बदमाश कहींका—हाय! हाय! तू ब्राह्मण मास्टर होकर मेरा शील लूटना चाहता है। अरे कोई बचाओ।' रामतनु तो हक्के-बक्के रह गये। वह रामतनुके बिल्कुल समीप आ गयी थी। कपड़े अस्त-व्यस्त कर रक्खे थे उसने। अधरचन्द्र तो गुंडोंको लिये छिपा खड़ा ही था। तुरंत आकर हल्ला मचाने तथा रामतनुको गालियाँ बकते हुए उन्हें मारने लगा। गुंडे भी प्रहार करने लगे। रामतनुकी तो

कुछ समझमें ही नहीं आया कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है। हल्ला सुनकर आस-पासके घरोंमेंसे लोग निकल आये। खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। गाँवके लोग तो रामतनुके स्वभावसे परिचित और उनके प्रति अत्यन्त सहानुभूति तथा श्रद्धा रखते थे। प्रायः सभी उनसे उपकार पाये हुए थे। रामतनुके उपकार तो अधरचन्द्रपर भी कम नहीं थे। पड़ोसीके नाते वह बीसों बार उनकी सहायता प्राप्त कर चुका था। एक बार तो अधरचन्द्रको प्लेग हो गया था। डबल गिल्टी थी। सारे गाँवमें प्लेग फैला था। घरवाले भी सब अधरचन्द्रको छोड़कर चले गये थे। उस समय एक रामतनु ही ऐसे थे जो अपने पड़ोसी अधरकी सेवामें चौबीसों घंटे लगे रहे, दवा-दारू की और उसे बचाया। घरवाले तो दस दिनके बाद लौटे थे। पर कृतघ्न तथा दूसरेको दुःख देनेमें ही सुखका अनुभव करनेवाले अधरचन्द्रपर रामतनुके उपकारोंका कोई असर नहीं था। इसी दुष्ट स्वभाववश वह आज अपनी आसुरी क्रियामें लग रहा था। उसने तो हो-हल्ला इसलिये मचाया था— गाँववालोंको वह अपने पक्षमें कर ले। रामतनुके प्रति वे सब नाराज हो जायँ तथा गाँवभरमें रामतनुकी बदनामी हो जाय। पर भगवान् तो सब देखते ही हैं। वहाँ एकत्र हुए गाँववालोंमें एकाधको छोड़कर प्रायः सभी रामतनुको सच्चा सत्पुरुष तथा निर्दोष मानते थे और अधरचन्द्रको दोषी। वे अधर-चन्द्रके दुष्ट स्वभावसे भी परिचित थे। उनमेंसे एकने उस स्त्रीको भी पहचान लिया, वह समीपके गाँवकी ही एक बड़ी बदनाम दुश्चरित्रा थी। उसका पेशा यही था। गुंडे भी पहचाने गये।

लोगोंने तुरंत रामतनुको बचा लिया । गुंडोंपर तथा अघरचन्द्रपर उनको रोष आ गया । वे सब इनपर टूट पड़े पर सात्त्विक-हृदयके श्रीरामतनु महाराज इसको नहीं सह सके । उन्होंने हाथ जोड़कर स्वयं अपनेको बीचमें डालकर उन सबको बचाया । हालाँ कि उस समय उनके सारे शरीरमें मारके कारण बड़ी पीड़ा हो रही थी । कनपटीके पास तथा बायें कंधेपर लाठीकी चोटसे खून बह रहा था । पर वे इसकी परवा न करके अपने स्वभाववश उन दुष्टोंको बचानेमें लग गये । आखिर अपनी शपथ दिलवायी तथा मारने-वालोंकी मार स्वयं सहनेको तैयार हो गये । तब उन दुष्टोंकी जान बची । वह स्त्री तो पहचाने जाते ही भाग गयी ।

इधर यह सब देखकर दो आदमी भागकर दो मील दूर एक गाँवमें थाना था वहाँ खबर देने पहुँच गये थे । उनसे इस जुल्मकी बातें सुनते ही दारोगाजी सिपाहियोंको साथ लेकर तुरंत चल दिये । दारोगाजी भी भाग्यसे रामतनुजीके द्वारा उपकृत थे । रामतनुजी विद्वान् तथा उच्च पदपर नौकरी करते थे, इससे सरकारी क्षेत्रमें उनका बड़ा आदर था, सभी उनकी इज्जत करते थे । उन्होंने ही आरम्भमें दारोगाजीकी नौकरी लगायी थी । दारोगाजीने पहुँचते ही जाँच की और गुंडोंसहित अघरचन्द्रको पकड़ लिया । पचासों आदमी गवाही देनेको तैयार थे । सिपाहियोंको भेजकर दारोगाजीने उस आवारा स्त्रीको भी पकड़ मँगवाया । उसने आते ही अपराध स्वीकार किया और बताया कि 'वह तो अघरचन्द्रके द्वारा पंद्रह रुपये पाकर उसके कथनानुसार करनेको आयी थी । उसे जैसा करनेको अघर-

चन्द्रने कहा था, वैसा ही किया। उसे यह पता नहीं था कि ये लोग रामतनु बाबूको मारेंगे।'

गुंडे भी पुलिसके भयसे ढीले पड़ रहे थे। यह सब देखकर अधरचन्द्रके होश हवा हो गये। वह बिल्कुल घबरा गया, काँपने लगा और उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। यह सब देखकर रामतनु बाबू बहुत दुखी हो रहे थे। उन्हें अपने अपमान तथा चोटका कष्ट तो भूल गया। वे अधरचन्द्रके दुःखसे दुखी होकर उसे छोड़ देनेके लिये दारोगाजीसे विनम्र अनुरोध करने लगे।

दारोगाजीने बड़े आदरसे, परंतु कड़ाईसे कहा कि—'रामतनु बाबू! आप पुलिसके काममें दखल न दीजिये। हमने दुष्टोंको रँगे हाथों पकड़ा है और हमारे पास इनको सजा दिलानेके लिये सबूत तथा गवाह मौजूद हैं। अपराधोंका घटाना पुलिसका कर्तव्य है। अपराधोंका घटना अपराधियोंको दण्ड मिलनेसे ही सम्भव है। हम इस सम्बन्धमें आपका कोई अनुरोध नहीं सुनना चाहते।' रामतनु-जीने फिर बहुत कहा, तब दारोगाजीने कहा कि—'हमने तो आपके घावों तथा चोटोंकी जाँच करके रिपोर्ट देनेके लिये हुगलीसे सरकारी डाक्टरको बुलवाया है और आप इन दुष्टोंको छुड़ाना चाहते हैं।'

पुलिसवालोंने रामतनु बाबूको आदरसहित उनके घर पहुँचा दिया। वहाँ एक सिपाही इस कामके लिये बैठा दिया गया, जो डाक्टर आनेपर उनकी रिपोर्ट लेकर थानेपर आ जाय। गाँवके बहुत-से लोग रामतनु बाबूके घरपर जमा हो गये। सभी चाहते थे

दुष्टोंको दण्ड मिले। पर रामतनु बाबूको बड़ा मानस-क्लेश हो रहा था। वे किसी भी उपायसे अधरचन्द्रको बचाना चाहते थे। बड़ी व्याकुलता थी उनके कोमल हृदयमें—

'पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।'

वे गाँववालोंसे बोले— 'देखिये, मनुष्य अपने-अपने स्वभावके अनुसार बर्ताव-व्यवहार करता है। परंतु दुःख तो सभीको होता है। आज मेरे कारणसे अधरचन्द्र तथा उसके परिवारको कितनी पीड़ा हो रही है। सचमुच उनकी इस पीड़ामें मैं ही कारण हूँ। किसी भी हेतुसे हो, अधरबाबू मेरे कारणसे दुखी थे और उस दुःखने ही उनसे ऐसा व्यवहार करवा दिया। वस्तुतः मुझपर जो मार पड़ी, वह तो मेरे अपने ही पूर्वकृत कर्मका फल है। मेरा प्रारब्ध ऐसा न होता तो अधरचन्द्रमें क्या शक्ति थी कि वे मुझको कष्ट पहुँचा सकते। यह तो मेरे ही कर्मका फल मुझे मिला। वे भूलसे इसमें निमित्त बनकर अपना बुरा कर बैठे, यह उनकी भूल है। भूला हुआ आदमी दया तथा क्षमाका पात्र होता है। वह तो पागल है न? अतएव मेरी प्रार्थना है—एक बार हमलोग चलकर दारोगाजीसे प्रार्थना करें कि वे इस मामलेको आगे बढ़ावें ही नहीं। वे न मानें तो फिर ऐसी व्यवस्था करें कि अधरचन्द्रके विरुद्ध कोई भी भाई गवाही न दें। मैंने तो अभी बयान दिया ही नहीं है। मैं अपने बयानमें कह दूँगा कि पैर फिसलकर गिर पड़नेसे मेरे चोट आ गयी।

'आपलोग एक बातपर और विचार कीजिये—अबतक अपने

गाँवका यश सर्वत्र फैला है। किसीको भी किसी अपराधपर कभी सरकारी दण्ड नहीं मिला। कभी अपने गाँवके नामपर दाग लगा ही नहीं। अब यदि अधरबाबू दण्डित हो गये तो गाँवपर धब्बा लग जायगा। लोग चर्चा करेंगे कि उस गाँवमें ऐसे लोग रहते हैं। अतः प्रकारान्तरसे गाँवका ही नाम बदनाम होगा। आगे चलकर इससे कोई लोग अनुचित लाभ उठाकर गाँववालोंको परेशान भी कर सकते हैं। अतः इस भावी विपत्ति तथा कलंकके टीकेसे बचनेके लिये भी अधरबाबूपर कोई कार्यवाही नहीं होनी चाहिये और वे निर्दोष ही छूट जाने चाहिये। गाँवभरको निष्कलङ्क बनाये रखनेके लिये यह बड़ा आवश्यक है।' गाँववाले तो यह सब सुनकर दंग थे। कोई मन-ही-मन रामतनु बाबूकी प्रशंसा कर रहे थे और कोई-कोई उनकी इस दयाको कायरता, देश-काल-पात्रका विरोधी आचरण, अपराध बढ़ानेकी चेष्टा और मूर्खता बतला रहे थे। रामतनु बाबूकी आँखोंसे परदुःखकातरताके कारण आँसू बह रहे थे !

उधर पुलिसके आते ही गाँवभरमें समाचार फैल गया था। अधरबाबूकी स्त्री बड़ी घबरा रही थी। वह भली थी, वह पतिको यह सब दुष्कर्म करनेसे रोका भी करती थी। पर वह खल-हृदय उसकी बातको मानता नहीं था। रामतनु बाबूकी स्त्री अबलासे उसकी बहुत प्रीति थी। रामतनु बाबूकी पत्नी—यह सोच-कर कि कहीं आवेशमें आकर गाँवके लोग अधरबाबूकी स्त्रीको परेशान न करें—दौड़कर उसको अपने घर ले आयी थी और उसको समझा दिया था कि 'हमलोगोंके द्वारा अधर बाबूका कुछ भी

अनिष्ट नहीं होगा।' वह अपने भले पति रामतनु बाबूके सत्-स्वभावसे परिचित थी और इस स्वभावके रक्षण तथा संवर्धनमें उनकी सहायक भी थी। अस्तु! इस समय रामतनु बाबू गाँववालोंसे जो कुछ कह रहे थे, सब अधरचन्द्रकी स्त्री सुन रही थी और उसके हृदयमें रामतनु तथा उनकी पत्नी अन्नदाके प्रति श्रद्धा बढ़ी जा रही थी और अपने पतिके दुष्ट स्वभावके कारण अपने प्रति लज्जा और घृणा!

गाँववालोंमें श्रीहरिपद नामक एक सात्त्विक स्वभावके वृद्ध सज्जन थे। उनको रामतनुकी बातें बहुत अच्छी लगीं और उन्होंने रामतनु बाबूकी प्रशंसा करते हुए तथा उनका समर्थन करते हुए गाँववालोंको समझाया। गाँववालोंका मन कुछ पलटा। इतनेमें डाक्टर आ गये। डाक्टर भी रामतनु बाबूसे परिचित तथा उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। रामतनु बाबूने समझाकर डाक्टरसे यह लिखवा लिया कि 'उन्होंने सब जाँच कर ली है। रिपोर्ट पीछे देंगे।' रामतनु बाबूने अधरचन्द्रके अनुकूल रिपोर्ट लिखनेके लिये डाक्टरसे बहुत अनुरोध किया, पर डाक्टरको उनकी बात नहीं जँची। आखिर वे इस बातपर राजी हो गये कि 'हम रिपोर्ट अभी नहीं दे रहे हैं। इस बीच आप दारोगाजीको राजी कर लीजिये; केस ही न चले तो फिर हमारी रिपोर्टकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सारा मामला ही समाप्त हो जायगा।' इसीके अनुसार उन्होंने रिपोर्ट पीछे देनेकी बात लिख दी थी।

डाक्टरके लौट जानेपर रामतनु बाबू गाँवके चार-पाँच सम्भ्रान्त

वृद्ध पुरुषोंको लेकर थानेपर गये। दारोगाजीको सब बातें समझायीं और रो-रोकर श्रीअधरचन्द्र तथा उसके साथियोंको बिना केस चलाये छोड़ देनेका अनुरोध किया। दारोगापर रामतनुजीके इस विलक्षण व्यवहारका प्रभाव पड़ा। उस दिन भाग्यसे थानेमें पुलिसके सर्कल इन्सपेक्टर प्रमथ बाबू आये हुए थे। वे भी यह सब सुन-देख रहे थे। उनपर प्रभाव पड़ा। दारोगाजीने उनसे बात की। ये सारी बातें अधरचन्द्र तथा उनके साथी भी सुन रहे थे। गाँवमें भी रामतनुकी चेष्टा तथा बातें वे देख चुके थे। अतः उनका हृदय अपने दुष्कर्मपर पश्चात्तापकी आगसे जल रहा था और वह क्रमशः बदलकर निर्मल हुआ जा रहा था। जो काम बड़े-बड़े दण्डों तथा जेलोंसे नहीं हो सकता, वह रामतनुजीके सद्व्यवहारसे अनायास हो रहा था!

प्रमथ बाबूने बीचमें पड़कर गाँववालोंसे कहा—'देखिये! आपलोग एक अपराधीको, जो अपराध करते समय पकड़ा गया है, बचाने जाकर अपराध बढ़ानेमें सहायक बन रहे हैं और प्रकारान्तरसे समाजका तथा अपने गाँवका अहित करने जा रहे हैं। ऐसे अपराधीको जरा भी दण्ड नहीं मिलेगा तो अपराध करनेवाले लोगोंका दुःसाहस बढ़ेगा जो समाजके लिये बड़ा घातक होगा। ये रामतनु बाबू तो साधुहृदय हैं, ये इस बातको नहीं समझ सकते। पर आपलोग इनके इस पागलपनका साथ क्यों दे रहे हैं?'

इसपर श्रीहरिपद तथा रामतनु बाबूने अनेकों युक्तियोंसे प्रमथ बाबूको समझानेकी चेष्टा की कि वास्तवमें दण्डसे अपराध नहीं घटते।

अपराध घटेंगे तो प्रेम तथा सहानुभूतिसे ही घटेंगे। कष्टके समय अहैतुक सेवा प्राप्त करनेपर ही अपराधीका हृदय-परिवर्तन होगा। फिर उन्होंने यह भी कहा कि 'हमलोगोंने निश्चय किया है कि न तो आपको अधर बाबूके विरुद्ध एक भी गवाह मिलेगा, न कोई सबूत ही। तब आप क्या करेंगे।'

प्रमथ बाबू प्रभावित तो पहलेसे ही थे। अब उनपर और भी प्रभाव पड़ा। पर उन्होंने जरा रुखाईसे कहा—'देखिये, मुझे आपलोगोंके प्रति आदर है—आपकी उदारताका मैं सम्मान करता हूँ, पर इस प्रकार सहसा अपराधीको छोड़कर हमलोग कर्तव्यविमुख नहीं होना चाहते। हम सोचेंगे—क्या किया जा सकता है। आपलोग अभी उन्हें छुड़ाना चाहते हैं तो हमलोग अस्थायी रूपसे इन्हें छोड़ देते हैं परंतु कोई इनकी जमानत देनेवाले आपलोगोंमेंसे तैयार हो जायँ।'

इसपर रामतनु बाबू तुरंत बोल उठे—'महाशय! मैं जमानत-मुचलका जो कुछ आप कहें, देनेको तैयार हूँ।'

यह सुन-देखकर इन्सपेक्टर प्रमथ बाबू तथा दारोगाजी दोनोंका हृदय द्रवित हो गया। वे भी आखिर मनुष्य ही थे। उन्होंने अधरचन्द्रको बुलाकर कहा—'देखा तुमने? सुनी सब बातें? कहाँ तुम और तुम्हारा बर्ताव और कहाँ ये और इनका बर्ताव! अब तुम क्या कहते हो?' अधरचन्द्रकी आँखें तो सावन-भादोंके बादल बनी हुई थीं। उसने रोते तथा घिघियाते हुए कहा—'हुजूर! पश्चात्तापकी आगने मेरे हृदयकी सारी कालिमाको जलाकर

खाक कर दिया है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, मैं पिशाच हूँ और ये महान् संत हैं, देवता नहीं, देवताओंके भी पूजनीय महात्मा हैं। पर मैं बचना नहीं चाहता। मुझे आजन्म कालापानी मिलना चाहिये। पर मेरे अपराधोंको देखते तो आजन्म कालापानी भी पर्याप्त नहीं होगा। मैंने जीवनभर अपराध-ही-अपराध किये हैं। सदा भला करनेवालोंका भी सदा बुरा किया है। यद्यपि उनकी कृपासे मेरे हृदयकी सारी कालिमाका विषभरा कूड़ा आज जल गया है। इसीसे मैं बचना नहीं चाहता। आप मेरा चलान कीजिये। मैं स्वयं अपना अपराध स्वीकार करूँगा।'

यह सुनकर रामतनु बाबू रो पड़े और लपककर उन्होंने अधरचन्द्रको हृदयसे लगा लिया और उसके आँसू पोंछने लगे।

प्रमथ बाबूकी रायसे दारोगाजीने उन लोगोंको छोड़ दिया। सब कागज फाड़ दिये गये। सब सानन्द विदा हुए। प्रमथ बाबूने तथा दारोगाजीने रामतनु बाबूकी चरण-धूलि ली। रामतनु बाबू बड़े आदरसे अधरचन्द्रके गलेमें हाथ डाले चले जा रहे थे। रामतनु बाबूका चेहरा खिल रहा था और उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू थे। अधरचन्द्रका सिर नीचा था, मुख उदास था और नेत्रोंसे पश्चात्तापके आँसुओंकी धारा बह रही थी। गाँववाले घेरे चल रहे थे। गुंडे भी भले मानस बनकर घर लौट रहे थे।

—चारुचन्द्र शील

कृतज्ञता

मोहनलाल बड़े गरीब घरका लड़का था। उसके माता-पिता मर गये थे। उसकी जातिके ही एक धनी सज्जनने बच्चेको अनाथ समझकर अपने पास रख लिया। नौकरकी भाँति नहीं, बच्चेकी भाँति। मोहनलाल उनकी सभी प्रकारकी सेवा बड़ी प्रसन्नतासे करता और वे उसे बड़े प्यार-दुलारसे पढ़ाते, खिलाते-पिलाते, सार-सँभाल रखते। बड़ा होनेपर उसे एक कपड़ेकी दूकान करवा दी। समयकी बात, कुछ समय बाद उन सज्जनकी मृत्यु हो गयी। विधवा पत्नी रही और एक लड़का श्यामलाल रहा। लड़का सुशील था। उसका विवाह हो चुका था। वह अपना कारोबार सँभालता था। गोदाममें माल रहता। एक दिन रातको अकस्मात् गोदाममें आग लग गयी। उस समय बहुत कम लोग बीमा कराते थे। साढ़े तीन लाखका गोदाममें माल था। दमकल देरसे पहुँची। गोदामका सारा माल देखते-देखते जलकर खाक हो गया। डेढ़ लाख रुपये तो उनके घरके थे। दो लाख लोगोंके देने थे। कुछ और देना-

पावना था। सब मिलाकर लगभग डेढ़ लाख रुपये देने रह गये। इसी बीच श्यामलालको चिन्ताके मारे टी० बी० की बीमारी हो गयी और दो ही महीनेमें उसका देहावसान हो गया। बच रही उसकी विधवा माता तथा युवती वधू! तीन महीनेके अंदर ही यह सब अनर्थ हो गया!

मोहनलाल किसी कामसे देश गया था, वहाँ उसको संग्रहणी हो गयी। इससे वह विशेष अशक्त हो जानेके कारण कलकत्ते आया नहीं। कुछ अच्छा होनेपर आया और उसने श्यामलालकी गोदाममें आग लगने तथा उसके देहान्त हो जानेका समाचार सुना तो वह सन्न रह गया। काटो तो खून नहीं! वह तुरंत श्यामलालके घर पहुँचा और माँकी गोदमें पड़कर रोने लगा। उसको बड़ा पश्चात्ताप इस बातका था कि इस सारी अनर्थमयी दुर्घटनाके समय वह दूर रहा और जान भी नहीं पाया कि क्या हो गया।

उसकी दूकान अच्छी चल निकली थी। विवाह आदि भी हो गये थे। उसके पास साठ-सत्तर हजारकी पूँजी भी हो गयी थी। उसने रोकर कहा—'माताजी! श्यामलाल भाई तो जाता रहा, पर तुम्हारा यह अभागा छोटा बेटा मोहनिया अभी जीवित है। श्यामलालकी पूर्ति तो मैं नहीं कर सकता, पर मैं जबतक जीता हूँ, तुमको जरा भी कष्ट नहीं होगा। मेरे पास अपना कुछ भी नहीं है। मेरे शरीरकी प्रत्येक खूनकी बूँद स्वर्गीय पिताजीकी देन है। मैं उनका बदला सौ जन्ममें भी नहीं चुका सकता। चुकानेकी कल्पना भी नहीं करता। मैं बड़ा अभागा हूँ जो तुमको और पूजनीया

भाभीजी—भाई श्यामलालकी पत्नीको इस अवस्थामें देख रहा हूँ। मैं अब यहीं तुम्हारे चरणोंमें रहूँगा। सेवा करूँगा। तुम्हारी छोटी बहू तुम्हारी तथा भाभीकी चाकरी करेगी। जो कुछ रूखा-सूखा भगवान् देगा, सब मिलकर खायेंगे। मैं कमाकर सारा ऋण चुकाऊँगा, यह नहीं कि यह सब मैं पिताजीके उपकारका बदला चुकानेके लिये करूँगा। बदलेका तो सवाल ही नहीं, पर मैं ऐसा किये बिना रह नहीं सकता। अतः अपने सुखके लिये ही करूँगा।' यों कहकर वह फुफक-फुफककर रोने लगा। वे दोनों सास-बहू भी रोने लगीं, मोहनलालकी स्त्री भी रो रही थी। श्यामलालकी माताने मोहनलालको हृदयसे लगाकर उसके आँसू पोंछे।

तबसे मोहनलाल और उसकी स्त्री खरीदे गुलामकी तरह उनकी सेवामें रहने लगे। इन दोनोंके सद्व्यवहारसे वे अपना दुःख बहुत कुछ भूल गयीं। मोहनलालकी कीर्ति फैली, इज्जत बढ़ी तथा साथ ही कारोबार भी। दो ही सालमें श्यामलालका सारा ऋण ब्याजसमेत चुका दिया गया। अपनी दूकानका नाम भी पलटकर उनका कर दिया तथा दोनों पति-पत्नीने दोनों सास-बहुओंकी निर्दोष सेवामें लगे रहकर अपना सारा जीवन बिताया। मोहनलालके एक लड़का था, उसको श्यामलालकी बहूको गोद दे दिया। अपना नाम मिटाकर मोहनलालने अपने धर्मपिता तथा भाई श्यामलालका नाम वंशपरम्परामें चलाया। धन्य!

—सीताराम गुप्त

आदर्श चित्रों और वाक्योंका प्रभाव

आदरणीय शम्भूसिंहजी कौशिक और मैं निमाड़ क्षेत्रका भ्रमण कर रहे थे। एक दिन हमें एक अध्यापक महोदयने अपने घर निमन्त्रित किया। वह दिन रविवारका था। हम दोनों उनके घर गये। बैठकमें हमने महापुरुषोंके चित्र और वेदवाक्योंके बोर्ड लगे हुए देखे तो मन प्रसन्न हो उठा। कुछ देर इधर-उधरकी बात होती रही तो वे सज्जन कुछ फल लेकर आये, कारण हमें उपवास था। हमसे उन्होंने फलाहार करनेका आग्रह किया, तो 'कौशिक' जीने उन्हें भी फलाहार करनेको कहा।

इतनेमें ही उनका ९ वर्षीय पुत्र वहाँ आ गया। उसने कौशिकजीका आग्रह सुना तो दीवालकी ओर इशारा करके वह अपने पितासे बोला, 'दादा! अपने यहाँ लिखा है, जो अकेला खाता है वह चोर है। इसलिये ये अकेले नहीं खायेंगे, ये चोर थोड़े ही हैं।'

हमने उधर दीवालकी ओर देखा, वहाँपर बोर्ड लगा था—

'केवलाघो भवति केवलादी।'

(जो अकेला खाता है, वह चोर है।)

अनायास ही हमारे दिमागमें आदर्श चित्रों एवं आदर्श वाक्योंके लिखने, लगाने एवं निरन्तर उस वातावरणमें पलनेवालोंपर उनका क्या प्रभाव होता है, यह समझमें आ गया; क्योंकि प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या है। —दुर्गाशंकर त्रिवेदी

जरासे कुसंग, गंदे पोस्टर और सिनेमाका दुष्परिणाम

छः साल पहलेकी बात है। मैं·······में पढ़ता था। बी० एस्-सी० फाइनलकी तैयारी कर रहा था। एक दिन दुर्भाग्यवश एक छात्र-मित्रके घर चला गया। वे सिनेमाके शौकीन थे। मैं अबतक कभी सिनेमामें नहीं गया था, उस ओर न मेरा कभी ध्यान गया था, न मेरी रुचि ही थी। पढ़नेमें ही मन लगा रहता था। इसीसे मैं अबतक सदा प्रथम श्रेणीमें ही उत्तीर्ण होता रहा। उन मित्रने मुझको साथ ले जाकर पहले तो कई ऐसे पोस्टर दिखलाये, जिनमें सिनेमा-तारिकाओंके प्रायः नग्न-से चित्र थे। फिर लौटकर दो-चार सिनेमासम्बन्धी पत्र दिखलाये, जिनमें बहुत-सी तरुणी अभिनेत्रियोंके विविध भाव-भङ्गिमाओंके चित्र थे और उनका वर्णन था। तदनन्तर उन्होंने सिनेमाकी मौजका वर्णन किया और गंदी बातें न मालूम क्या-क्या कह गये। मैं ऊपरसे 'ना ना' करता रहा, पर मेरा मन उन बातोंको सुननेके लिये खिंच रहा था। मैं उस दिन लौट तो आया, पर मेरा मन अब काबूमें नहीं रहा। मैं दूसरे ही दिन सिनेमा पहुँचा। ऊँचे दर्जेका टिकट लिया और देखने जा बैठा। उसी दिनसे मेरा जीवन बदल गया। अब तो मैं रोज सिनेमा देखने लगा। किसी दिन नहीं जा पाता तो बड़ी बेचैनी रहती। एक दिनकी बात, मैं संध्याके समय देखने गया था। मेरे बगलमें ही एक अपरिचित सुन्दरी तरुणी बैठी थी। पीछे पता लगा कि वह भी एक कालेजकी छात्रा थी। उस दिन सिनेमामें कुछ ऐसा दृश्य था कि उसे देखकर मैं पागल-सा हो गया।

मेरा मन बेकाबू हो गया। यही दशा उस तरुणी छात्राकी भी हुई। खेल समाप्त होते ही परस्पर संकेत हुआ और हम दोनों चल दिये किसी अज्ञात स्थानको। कहाँ गये, क्या किया यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। पर हम दोनोंका ही पतन हो गया। पढ़ाई-लिखाई सारी चौपट हो गयी। मैं परीक्षामें फेल हो गया। हमारी सिनेमाकी प्रवृत्ति और साथ-ही-साथ पाप-सरितामें बहनेकी वृत्ति बढ़ती गयी। संक्षेपमें—परिणाम यह हुआ कि उस कुमारी तरुणीको इसी वर्ष टी-बीकी बीमारी हो गयी और वह माता-पिताको रुलाकर चल बसी! मैं जिंदा तो रहा, पर मेरा चौमुखा पतन हो गया। मैं शराबी-कबाबी भी हो गया। चोर भी बन गया। बड़ी बुरी हालत हुई। दूसरी बार परीक्षा दी, उसमें भी फेल हो गया!!

हमारे एक मामाजी हैं। वे बड़े बुद्धिमान् हैं। उन्होंने मेरी बीमारीको पहचाना और गत वर्ष जुलाईसे वे मेरी गतिविधिपर विशेष ध्यान रखने लगे। बड़े प्यारसे वे मुझे कुपथसे हटानेकी चेष्टा करने लगे। फलतः मेरा सिनेमा जाना कुछ कम हुआ। फिर वे मुझे एक दिन······के पास ले गये। उन्होंने मुझको बहुत अच्छी तरह समझाकर मुझसे प्रतिज्ञा करवायी कि मैं अबसे सिनेमा नहीं देखूँगा, शराब आदिका स्पर्श भी नहीं करूँगा। फिर उन्होंने सिनेमासे होनेवाली बुराइयोंको बतलानेवाली एक किताब पढ़नेको दी। मैं तो स्वयं ही सिनेमाकी बुराइयोंका शिकार था। इस पुस्तिकासे मुझे बड़ी सहायता मिली। मेरे पिताजीने भी मुझको डाँटा-फटकारा नहीं, पर बड़े स्नेहसे रो-रोकर समझाया। भगवत्कृपासे तबसे मेरी प्रतिज्ञा निभ रही है। मैंने इस कुमार्गके क्षेत्रमें पड़कर देखा, मेरे-

जैसे हजारों युवक-युवतियोंका सर्वनाश हो रहा है। वे यह मीठा विष पीकर जर्जरित हुए जा रहे हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ, वे सबको सुबुद्धि दें। सरकारसे भी मेरी प्रार्थना है कि वह मेरे-जैसे लाखों तरुण-तरुणियोंकी जीवन-रक्षा तथा चरित्र-रक्षाके लिये बहुत शीघ्र ही या तो देशका सर्वनाश करनेवाली सिनेमा-संस्थाका उन्मूलन कर दें या इसमें पर्याप्त सुधार करके इसे देशोपकारी बना दें। पर जबतक यह प्रचुर धन पैदा करनेवाली चीज रहेगी और इसमें तरुणी स्त्रियाँ भाग लेंगी तबतक सुधार होना बड़ा कठिन है।*

—एक भुक्तभोगी दुखी छात्र

---

* उपर्युक्त पत्रको संक्षिप्तरूपमें छापा गया है। नाम-पते भी नहीं छापे जा रहे हैं। [illegible]नाका क्या दुष्परिणाम होता है, इसका यह एक छोटा-सा उदाहरण है। सिनेमासे कितने प्रकारके और अनर्थ हो रहे हैं। उनकी तो चर्चा ही यहाँ नहीं है। सिनेमाके द्वारा होनेवाले सर्वनाशकी कोई सीमा नहीं है। यह देशके लिये एक भयानक अभिशाप बन रहा है। पता नहीं, इसका क्या भीषण परिणाम होगा। अवश्य ही सिनेमाके बंद होनेकी बात सोचना वर्तमान वातावरणमें एक व्यर्थ चिन्तन और सिनेमाका विरोध करना भी अरण्य-रोदन-सा ही होगा। परंतु यह उपेक्षाका विषय भी कदापि नहीं है। हमारे पास ऐसे अनेक भुक्तभोगियोंके पत्र आते हैं, जिन्हें पढ़कर हृदय काँप उठता है। सम्मान्य संत श्रीविनोबाजीने गंदे पोस्टरोंके विरुद्ध आन्दोलन चलाया था। हम चाहते हैं सरकार कानून बनाकर उनका प्रचार बंद करा दे। साथ ही सिनेमासे होनेवाले भयानक दुष्परिणामपर भी गम्भीरतासे विचार करके कुछ ठोस उपाय सोचे।

—सम्पादक

भगवान्‌का वरदान

'वह किधर गये' 'वह किधर गये' ये शब्द डाक्टरोंके द्वारा मरी हुई घोषित की गयी मेरी माताने चौका लगी हुई जमीनपर पड़े-पड़े आँखें खोलकर दाहिने और बाँयें सिर घुमाकर देखते हुए कहा। मेरी दादीने, जो पास ही बैठी रो रही थी, प्रसन्न तथा विस्मित होकर पूछा—'बीनणी ! किसे पूछ रही हो, तबीयत कैसी है ?' माताजीने कहा—'श्रीकृष्ण-अर्जुन किधर गये ?' दादीजीने कहा—'श्रीकृष्ण-अर्जुन यहाँ कहाँ हैं ? तबीयत तो ठीक है ? बोलो मत, कमजोरी बढ़ेगी ।' उन्होंने (दादीजीने) समझा, प्रलाप है। पुनर्जीवनकी खुशीमें दादीजीने पुण्य संकल्प किया और मेरे पिताजीको मर्दानेमें सूचना दी गयी। और्ध्वदैहिककी सब तैयारी बंद की गयी और डाक्टर तथा वैद्यने जो बाहर मर्दानेमें थे, जनानेमें जाकर बीमार माताजीको देखा तो हृदयकी गति ठीक पाने तथा पुनः जीवित होनेपर आश्चर्य करने लगे। मैं और मेरे दो भाई तथा एक बहन एक कमरेमें पड़े रो रहे थे, सो हम भी खुशीमें उछलने-कूदने लगे। घंटे-दो-घंटे सुस्तानेके बाद मेरी माताजीने घरकी सब नौकरानियोंके सामने मेरी दादीसे कहना शुरू किया 'भाभीसा ! मुझे भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके साक्षात् दर्शन हुए हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं यहाँ मर गयी हूँ और बादलोंमें चल रही हूँ। चारों ओर धुआँधार-सा हो रहा है। थोड़ी देरमें बादल फट गये और मैं हरी-हरी घाससे ढकी जमीनपर चलने लगी। एक पगडंडी दिखायी दी और उसपर चलने लगी। कुछ दूर चलनेपर एक शहरका परकोटा दिखायी दिया और यह पगडंडी

उस परकोटाके दरवाजेकी ओर जाती दिखायी दी। दरवाजा भी दिखायी दिया। बहुत भूख होनेके कारण कुछ खानेके अभिप्रायसे मैं आगे बढ़ी, पर साथ ही विचार आया कि 'पैसे तो पास हैं नहीं, कोई कैसे देगा; खैर, किसीसे माँगकर ही थोड़ा खाऊँगी। परंतु बड़े घरकी स्त्री होकर कैसे माँगूँगी। माँगा तो नहीं जायगा।' इस उधेड़बुनमें चली जा रही थी कि अचानक रास्तेके बीच दो साधु एक सिंहको साथ लिये आकर खड़े हो गये। मैं सिंहको देखकर डर गयी और ठिठककर खड़ी रह गयी। श्याममूर्तिने मुस्कुराते हुए कहा—'डरै मत, यह सिंह हमारा पालतू है, खायेगा नहीं। तू कहाँ जा रही है?' मैंने प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा—'मैं दो महीनेसे बीमार थी, मुझे डाक्टरोंने कुछ खानेको नहीं दिया, सो महाराज! मैं बहुत भूखी हूँ। इस शहरमें जाकर कुछ खाऊँगी।' श्यामवर्ण महात्माने कहा, 'यह तो धर्मराजकी पुरी है। वह देख वह पुरद्वारपर बैठे वयोवृद्ध सफेद दाढ़ीवाले धर्मराज हैं। परंतु तुझे अभी वहाँ नहीं जाना है। तेरे बालक अभी छोटे-छोटे हैं, जबतक वे बड़े न हो जायँ तुझे वापस जाना है।' मैंने कहा, 'महाराज! मैं तो दो महीनेसे १००–१०० दस्त रोज होनेसे बहुत दुखी हो गयी हूँ। मैं अब वापस नहीं जाऊँगी।' श्यामवर्ण महात्माने फिर कहा, 'तेरे बालक अभी छोटे हैं और तेरा समय भी अभी नहीं आया है। तू जा, तुझे अब दस्तोंकी बीमारी नहीं होगी और समयपर तेरी सहज मृत्यु होगी। तू हठ मत कर, तू जानती है हम कौन हैं?' मैंने कहा, 'महाराज! मैं तो नहीं जानती।' दूसरे महात्माने कहा, 'ये तो श्रीकृष्ण हैं और मैं अर्जुन हूँ।' इतना

कहते ही वे दोनों आँखोंसे ओझल हो गये और मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं नीचे गिर रही हूँ। आँखें खुलीं तो आप सामने दिखायी दीं। दर्शनोंसे वञ्चित होनेके कारण मैंने पूछा था कि 'वह कहाँ गये ?'

तबसे उन्हें दस्तोंका रोग आजीवन नहीं हुआ। इस घटनाके समय मैं कोई पाँच वर्षका था, परंतु मेरी माताकी मृत्यु होना तथा पुनः जीवित होना साफ-साफ याद है। यह घटना मेरी दादी भी हमें कथाके रूपमें कहा करती थी और मेरी माताजी भी जब हम कौतूहलपूर्वक पूछते तो कहा करती थी। इस घटनाके तीस वर्ष पीछे दो-तीन दिनके हल्केसे बुखार होनेपर बात करते-करते माताजीकी आँखें फिर गयीं और इहलीला समाप्त हुई। उनके पति, पुत्र, पुत्रवधू, पोते, पोती, पोतेकी बहू इत्यादि रो रहे थे—डाक्टर कह रहे थे हार्ट फेल हो गया; परंतु भगवान् अपना वरदान सफल कर मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे। ये राजस्थानके प्रसिद्ध वीर, देशभक्त तथा भगवद्भक्त श्रीरावगोपालसिंहजी* खरवा जिला अजमेरकी छोटी बहन थीं और खँडेला (जयपुर) के राजा सज्जनसिंहजीकी धर्मपत्नी थीं—बोलो श्रीराधाकृष्णकी जय।

—श्रीजैतसिंह खंडेलावाला

---

* खरवाके रावसाहब श्रीगोपालसिंहजी बड़े भक्त थे। उनकी मृत्यु भी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करते-करते हुई थी। उस समयके 'कल्याण' में पं० झाबरमल्लजी शर्माद्वारा लिखित उनकी सफल मृत्युका पुण्य विवरण छपा था।—सम्पादक



मानवता

एस. एस. सी. का रिजल्ट निकला । उसी दिन हाथमें एक छोटी-सी कागजकी पुर्जी लिये वह ट्रक-ड्राइवर मेरे पास आया और बोला, 'भाई ! जरा यह नम्बर तो देख दो ।'

मैंने पुर्जीमें लिखा नम्बर पढ़ा और राजकोट केन्द्र देखा । अखबारके पन्ने उलटकर नम्बर खोजने लगा । वह ट्रक-ड्राइवर बड़ी उत्सुक दृष्टिसे अपलक मेरी ओर देख रहा था । मैंने उसको देखा और मैं पूछ बैठा—'किसका नम्बर है ?'

आतुरता नहीं रोक सकता हो—इस भावसे उसने कहा—'तुम पहले नम्बर देख दो, पीछे मैं सब बताता हूँ ।'

मैं इस ट्रक-ड्राइवरसे परिचित हूँ, यह मुझको जानता है । हम दोनों एक ही गाँवके निवासी हैं । मैंने पढ़कर डाक-विभागमें नौकरी कर ली और इसने कुछ बड़े होनेपर जिम्मेवारीका खयाल आनेसे किसी प्राइवेट ट्रक कम्पनीमें काम करना शुरू कर दिया । अकेला फक्कड़ है, न कोई आगे, न पीछे । खाता-पीता है और जितना कमाता है, उतनेमें मौजसे जिंदगी बिताता है ।

वह बहुत खुश था, उसके चेहरेपर मनके आनन्दकी रेखाएँ स्पष्ट दीख रही थीं । उसने मुझे जो नम्बर बताया था, वह नम्बर एस. एस. सी. की परीक्षामें उत्तीर्ण छपा था । मैंने उससे कहा कि 'वह उत्तीर्ण हो गया है'—सुनते ही उसने गद्गद होकर कहा—

'आखिर प्रभुने उसकी ओर कृपादृष्टि की तो सही भाई !' और उसकी आँखें डबडबा आयीं ।

'तू किसकी बात कर रहा है, ड्राइवर ?' मैंने पूछा । और वह भूतकालकी याद करके कहने लगा, '[illegible] पहले एक

दुर्घटनाका केस हुआ था न ? उस दुर्घटनाके मामलेमें मैं निर्दोष छूट गया था भाई ! परंतु मुझको उसी समय यह मालूम हो गया था कि जो आदमी उस दुर्घटनामें मारा गया था, वह बेचारा एक मिलमें मजदूरी करके मुश्किलसे अपना गुजरान चलाता था। उसकी साइकल ताँगे और ट्रकके बीचमें आ गयी थी—इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी। इस मामलेमें मैं निर्दोष छूट गया था, पर जब मुझे यह पता लगा कि इसका एक लड़का अंग्रेजी तीसरेमें पास होकर चौथे दर्जेमें आया है और अब उसे पढ़ाई छोड़कर मजदूरीमें लगना पड़ेगा, तब ईश्वरने स्वाभाविक ही मेरे मनमें उसकी मदद करनेकी प्रेरणा की····उजले रंगका वह लड़का था, पर पढ़नेमें बहुत तेज नहीं था, अतएव उसे कहींसे फीसके पैसे मिल जायँ या फीस मा[illegible] हो जाय—इसकी सम्भावना नहीं थी। मेरे म[illegible]में आया कि जिस[illegible] [illegible] नहीं है, उसका यह ट्रक-ड्राइवर है।

'मैंने उस लड़केसे कहा—'भाई ! तू निश्चिन्त हो[illegible] पढ़ !····तुझे फीस, पुस्तकें मैं दूँगा, यों चार वर्ष सुख-दुः[illegible] निकल जायँगे'····उसकी माँ इधर-इधर दल-पीसकर पेट भरती [illegible] भाई ! आज मेरी खुशीका पार नहीं है। मेरा मनोरथ सफल [illegible] गया; क्योंकि वह पास हो गया····'इतना कहकर कुछ क्षणोंके लि[illegible] वह ट्रक-ड्राइवर कुछ गहरे विचारमें डूब गया ! फिर बोला—'यह सब ईश्वरकी लीला है भाई ! नहीं तो कहाँ मैं, कहाँ दुर्घटनामें मारा गया मिल-मजदूर और कहाँ उसका यह मैट्रिकमें पास होनेवाला बच्चा ! निमित्तकी बड़ी बात है भाई····' (अखण्ड आनन्द)

—'स्नेहाब्धि'



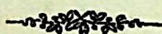
बच्चीकी बातका असर

मैं सिगरेटका शिकार हो चुका था। मेरे घरके सब लोग मुझे इस आदतके छुड़ानेके लिये लाख-लाख प्रयत्न करते रहे, पर मैं टस-से-मस नहीं हुआ। मेरी पत्नीतक भी हार गयी। मेरे मित्र भी हार गये, [illegible] दिल न पिघला। मैंने यह बुरा व्यसन नहीं छोड़ा!

एक दिन मैं संध्याके समय बैठकमें बैठा चुपचाप सिगरेट पी रहा था कि अचानक मेरी लड़की लज्जा कमरेमें आ गयी और मेरी गोदमें बैठकर मेरे गालोंको सहलाती हुई बोली—'पिताजी! आप सिगरेट क्यों पीते हैं? मास्टरानीजीने मुझे पढ़ाया है कि जो लोग सिगरेट पीते हैं वे जल्दी मर जाते हैं। आप भी जल्दी मर जायँगे, पिताजी! आप न पीजिये न।' इतना कहकर वह रोने लगी। मैं अपने आँसुओंको थामे रहा और उसको प्यार करते हुए मैंने कहा—'बेटा! मैं अबसे सिगरेट नहीं पीऊँगा।' यह सुनकर वह प्रसन्न हो एकदम अपनी माँके पास गयी। मैं प्रभुको धन्यवाद देने

लगा कि 'हे प्रभु ! तेरे बच्चे क्या नहीं कर सकते। तू कितना अद्भुत है। तेरी गति कौन जानता है।' तबसे अबतक बहुत साल बीत गये हैं, आज मेरी बेटी काफी बड़ी हो चुकी है। जब मैं उसे देखता हूँ तो मनमें कहता हूँ कि 'हे प्रभु ! तू कितना दयालु है।'*

—श्रीओमप्रकाश गंडा



---

* भारतमें गत वर्ष ३,२०० करोड़ सिगरेट बनी हैं, जब कि सन् १९५२।५३ में केवल १८०० करोड़ ही बनी थी। खेदकी बात है कि तंबाकूका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इसमें कोई लाभ तो है ही नहीं वरं इस युगके वैज्ञानिकोंने तंबाकूमें छः प्रकारके विषोंका पता लगाया है—(१) निकोटीन, (२) प्रेसिक एसीड, (३) पाइरीडीन, (४) कोलीडीन, (५) एमोनिया और (६) कार्बन मोनो ऑक्साइड। और भी बहुत-से विष हैं। सब विषोंकी संख्या १८ तक हो चुकी है। आजके वैज्ञानिक एक पाउंड तंबाकूमेंसे इतना विष निकालते हैं, जिससे २०० मनुष्योंकी मृत्यु हो सकती है। भाँति-भाँतिके रोग तो तंबाकूसे होते ही हैं। इस व्यर्थकी ही नहीं, सर्वथा हानिकर वस्तुकी भारतमें ९ लाख एकड़ जमीनमें खेती होती है और ७० करोड़ पाउंडकी उपज होती है। इससे किसानोंको प्रतिवर्ष १५ करोड़, सरकारको तंबाकूके निर्यातसे १५ करोड़की विदेशी मुद्रा तथा कर आदिसे ५० करोड़ रुपयेकी आमदनी होती है। यहाँकी उपजी तंबाकू ८० प्रतिशत यहीं खप जाती है। बड़े-बड़े समझदार इस विष-सेवन तथा विष-प्रचारमें लगे हैं। इस दुर्व्यसनके साथ ही चाय, अंडे, शराब, सिनेमा आदिके दुर्व्यसन भी बढ़ रहे हैं। देशका दुर्भाग्य है !

—सम्पादक

प्रार्थनामें सच्ची आर्तता और प्रभुमें अटल विश्वास चाहिये

"मेरा यह अटल विश्वास है कि प्रभुसे यदि सच्चे मनसे प्रार्थना की जाय और आर्त्त होकर प्रभुको पुकारा जाय तो वे अवश्य ही प्रार्थना सुनेंगे। चाहिये प्रार्थनामें सच्ची आर्तता और प्रभुमें अटल विश्वास।"



(इसी पुस्तकसे—पृष्ठ १७)